RNI Reg. No. HARHIN/2015/63352

# पशुधन ज्ञान

वर्ष : 6 | अंक : 02 | जुलाई, 2020 | अर्धवार्षिक, हिसार | For Free Circulation only

प्रकाशक
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार – 125004 (हरियाणा)

NDDB DAIRY SERVICES

SAG™
सुपीरियर एनिमल जेनेटिक्स
Superior Animal Genetics

# 5K मुर्रा

## 5000 किलोग्राम से ज्यादा दूध देने वाली भैंसों के उच्च श्रेणी के सांड।

इन सांडो को उनके मूल उत्पादन क्षेत्र हरियाणा से
व्यवस्थित प्रजनन कार्यक्रम के माध्यम से लिया गया है।

| साबरमती आश्रम गौशाला (गुजरात) | एनीमल ब्रीडिंग सेंटर (उत्तर प्रदेश) | अलमादी सीमेन स्टेशन (तमिलनाडु) | राहुरी सीमेन स्टेशन (महाराष्ट्र) | रोहतक सीमेन स्टेशन (हरियाणा) |
|---|---|---|---|---|

Superior Animal Genetics

www.superioranimalgenetics.com sales@superioranimalgenetics.com

**डॉ. गुरदयाल सिंह**
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

# संदेश

हरियाणा कृषि प्रधान राज्य होने के साथ-साथ देश का अग्रणी पशुपालक राज्य भी है। कृषि एवं संलग्न क्षेत्रों में, पशुपालन क्षेत्र का आर्थिक विकास में योगदान सबसे ज्यादा है। आज के बदलते आर्थिक परिवेश में उच्च प्रोटीन युक्त आहार की मांग बढ़ रही है जिसे पूरा करने के लिए पशुपालन क्षेत्र पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। साथ ही साथ किसानों की आय दोगुनी करने में भी पशुपालन क्षेत्र की अहम भूमिका है। बढ़ती जनसंख्या के कारण कम होती कृषि जोत ने पशुपालन को अत्याधिक प्रासंगिक बना दिया है।

हरियाणा राज्य देश के दुग्ध उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके साथ-साथ मांस उत्पादन, अंडा उत्पादन, मछली पालन व पशुपालन से जुड़े अन्य व्यवसायों में भी काफी वृद्धि हो रही है।

लुवास अपने वैज्ञानिक शोधों के द्वारा हमेशा से पशुओं की उत्पादक क्षमता बढ़ाने, उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ाने और बीमारियों से बचाव जैसे विषयों पर नवीनतम जानकारियों एवं तकनीकों को पशुपालकों तक पहुँचाने का कार्य कर रहा है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका वैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों एवं पशुपालकों से ज्ञान के माध्यम से जोड़ने का कार्य करती है। लुवास एवं अन्य क्षेत्रों में होने वाले पशुओं से संबंधित शोध कार्यों को विस्तार शिक्षा निदेशालय के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया जाता है। पशुधन ज्ञान पत्रिका के प्रकाशन के अवसर पर विस्तार शिक्षा निदेशक एवं पत्रिका के संपादक एवं वैज्ञानिकों को बधाई देता हूँ एवं आशा करता हूँ कि पत्रिका अपने उद्देश्य में सफल हो।

**(गुरदयाल सिंह)**

**डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया**
निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय,
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

# संदेश

ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव का महत्वपूर्ण अंग है। पशुपालन प्राचीन काल से ही हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। पशुधन हमें खाद्य उत्पादों के अलावा रोजगार तथा खेती के कार्यों के लिए ऊर्जा, खाद्य आदि उपलब्ध करवाता है। दुग्ध उत्पादन का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में गेहूँ, धान और गन्ना जैसे प्रमुख पदार्थों से भी ज्यादा हिस्सा है।

हरियाणा पूरे भारतवर्ष में दुग्ध उत्पादन में अग्रणी राज्यों में से एक है एवं प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता में पंजाब के बाद दूसरे स्थान पर है। पशुधन में उच्चतर उत्पादों की प्राप्ति के लिए संतुलित आहार, नस्ल सुधार, बेहतर स्वास्थ्य तथा बीमारियों का नवीनतम तकनीक द्वारा निदान और इलाज आदि ऐसे प्रांसगिक विषय हैं जिनकी जानकारी पशुपालकों तक समय-समय पर पहुंचाना अति आवश्यक है। राज्य में कुल दुग्ध उत्पादन का लगभग 84 प्रतिशत हमें भैंसों एवं 15 प्रतिशत गायों से प्राप्त होता है। राज्य एवं देश की बढ़ती जनसंख्या, खाद्य सुरक्षा एवं संतुलित आहार के प्रति जागरूकता को ध्यान में रखते हुए पशुपालन क्षेत्र में रोजगार की अपार संभावना है। ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं में डेयरी, मत्स्य पालन, सुअर पालन, मुर्गी पालन एवं भेड़-बकरी पालन में बढ़ती रूचि एवं रोजगार की संभावनाओं को ध्यान में रखकर विस्तार शिक्षा निदेशालय पशुधन के विकास से सम्बन्धित नवीन जानकारियों एवं तकनीकों को पशुधन ज्ञान पत्रिका के माध्यम से पशुपालकों तक पहुंचाने का कार्य करता है।

हरियाणा प्रदेश ने पशुपालन के क्षेत्र में बहुत तरक्की की है जिसमें प्रदेश के पशु वैज्ञानिकों और पशुपालक किसानों का बहुत बड़ा योगदान है। अब विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका का वर्ष 2020 का द्वितीय अंक पशुधन व पशु उत्पाद से संबंधित सूचनाएं और ज्ञान पशुपालकों के घर-घर तक पहुंचाने का कार्य करेगा। मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों और अधिकारियों का धन्यवाद करता हूँ एवं पशुपालकों के लिए किए जाने वाले इस प्रयास की सराहना करता हूँ।

**(धर्मवीर सिंह दहिया)**

# सम्पादक की कलम से...

पशुपालक भाइयों आज के समय में पशुपालन एक उद्यम का रूप ले चुका है। पशु उत्पादों जैसे दूध, दही, लस्सी आदि की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ऐसे में पशुपालक एक उद्यमी की तरह सोच रखकर पशुपालन व्यवसाय से अधिकतम लाभ ले सकते हैं। बदलते परिवेश में पशुओं में नए–नए प्रकार के रोग एवं समस्याएं हो रही है। ऐसे में हमें पशुपालन संबंधी नवीन जानकारी एवं तकनीकों के बारे में अवगत होते रहना चाहिए।

पशुपालकों को सरल एवं आसान भाषा में यह जानकारी पशुधन पत्रिका के माध्यम से दी जा रही है। हमारा उद्देश्य है कि पशुपालक पारंपरिक ज्ञान के साथ–साथ वैज्ञानिक विधि की भी जानकारी रखें एवं जरूरत पड़ने पर उसका उपयोग करें।

पशुधन ज्ञान की पत्रिका में पशुपालन में लाभदायक सिद्ध होने वाली हाइड्रोपोनिक्स, ड्रमसाइलेज जैसे आधुनिक जानकारियों से साथ–साथ मिलावटी दूध की पहचान, विभिन्न मौसमों में पशुओं की देखभाल, घातक बीमारियों से बचाव, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल आदि विशयों पर बहुत सी नवीन जानकारी दी गई है। पशुपालकों से निवेदन है कि इसमें बताई गई दवाइयों से संबंधित जानकारी का उपयोग करने से पहले पशु चिकित्सक की सलाह अवश्य लें।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका पशुपालकों एवं अन्य बुद्धिजीवियों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी। मैं इस पुस्तिका के नवीन अंक के प्रकाशन पर कुलपति लुवास, विस्तार शिक्षा निदेशक, वैज्ञानिकगण एवं सम्पादक मंडल के सदस्यों का धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ।

**(देवेन्द्र सिंह)**

# विषय सूची


| क्र.सं. | विषय | लेखक | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|
| 1. | गाय व भैंसों में गर्भपात | केदार कार्की | 1 |
| 2. | बकरी के दूध की मानव पोषण में भूमिका और इसकी चुनौतियाँ | नेहा चौधरी, रूबी सिवाच एवं इंदू पांचाल | 3 |
| 3. | ब्याने से पूर्व, ब्याने के दौरान एवं ब्याने के बाद भैंसों की देखभाल | सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह | 5 |
| 4. | पशुओं में बांझपन– कारण और उपचार | केदार कार्की | 7 |
| 5. | नवजात भेड़ के बच्चे के साथ जटिलताएं व रोकथाम | लक्ष्मी बाई, प्रीती एवं रामकरण | 9 |
| 6. | पशु चिकित्सा कर्मियों को कोविड–19 महामारी में आपदा प्रबंधन बड़ी भूमिका | हरप्रीत सिंह, सुजॉय खन्ना एवं देवेंद्र सिंह | 11 |
| 7. | जलवायु परिवर्तन : कृषि एवं पशुधन उत्पादकता पर इसके प्रभाव | सतपाल, नीलम एवं निशा | 13 |
| 8. | त्वचा सम्बन्धी रोग व उनका बचाव | स्नेहलता चौहान, दिव्या अग्निहोत्री एवं तरुण कुमार | 16 |
| 9. | ऊँट वंश में त्वचीय (चर्म) रोग–रोकथाम एवं उपचार | विक्रम सिंह देवल, वसुन्धरा डावड़ा एवं अतुल शंकर अरोड़ा | 18 |
| 10. | गर्मियों और बरसात में पशु–प्रबंधन | सुजॉय खन्ना, हरप्रीत सिंह एवं देवेंद्र सिंह | 20 |
| 11. | संकरण द्वारा भारतीय गाय का सुधार | सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह | 22 |
| 12. | कृत्रिम गर्भाधान : लाभ, शंका एवं समाधान | वसुन्धरा डावड़ा, विक्रम सिंह देवल एवं अतुल शंकर अरोड़ा | 24 |
| 13. | सूअरों के रोग, सुरक्षा एवं नियंत्रण | सागर कादयान, सुजॉय खन्ना एवं देवेंद्र सिंह | 26 |
| 14. | अजोलाः पशु आहार का उत्तम स्त्रोत | सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह | 28 |
| 15. | किसानों की आय बढ़ाने के प्रभावी तरीके | संदीप, दीपक चोपड़ा, देवेन्द्र बिधान एवं दिपिन चंद्र यादव | 30 |
| 16. | बरसीमः सर्दियों का बेहतरीन हरा चारा | सज्जन सिंह, सरिता एवं दलजीत सिंह | 32 |
| 17. | ऊँट में होने वाले प्रमुख संक्रामक रोग | राजेन्द्र यादव, सीताराम गुप्ता एवं मनोहर लाल सैन | 35 |
| 18. | पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान का समाज में महत्व | कृष्ण लाल दहिया एवं जसवीर सिंह पंवार | 38 |
| 19. | एथनोवेटरीनरी, परंपरागत पशु आयुर्वेद | के.एल. दहिया | 42 |
| 20. | भारत में पिगरी क्षेत्र की संक्षिप्त पृष्ठभूमिः अतीत, वर्तमान और भविष्य | ओशिन, सागर कादियान एवं नन्धिनी पी.बी. | 46 |
| 21. | स्युडोरेबीस रोग बारे आवश्यक जानकारी | दिव्या अग्निहोत्री, स्नेहलता चौहान एवं तरुण कुमार | 48 |

# गाय व भैंसों में गर्भपात

**केदार कार्की**
सेन्ट्रल लुजोन स्टेट यूनिवूसटी, फिलिपिन्स
वेटरनरी हेल्थ मैनेजमेंट कन्सलटेन्ट अस्ट्रीच नेपाल प्रा.ली. लुम्वीनी नेपाल

गाय व भैंसों में गर्भपात वह अवस्था है जिससे कृत्रिम अथवा प्राकृतिक गर्भाधान के द्वारा गर्भ धारण किए पशु अपने गर्भ में पल रहे बच्चे को सामान्य गर्भावस्था पूरी होने के लगभग 20 दिन पहले तक की अवधि में किसी भी समय गर्भाशय से बाहर फेंक देता है। यह बच्चा या तो मरा हुआ होता है या फिर वह 24 घण्टों से कम समय तक ही जीता है। प्रारम्भिक अवस्था में (2–3 माह की अवधि तक) होने वाले गर्भपात का पशुपालकों को कई बार पता ही नहीं चलता तथा पशु जब पुनः गर्मी में आता है तो वे उसे खाली समय बैठते है दो या तीन माह के बाद गर्भपात होने पर पशुपालकों को इसका पता लग जाता है।

**गर्भपात के कारण :**

गाय या भैंसों में गर्भपात होने के अनेक कारण हो सकते हैं जिन्हें हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं–

**(क) संक्रामक कारण :**

इनमें जीवाणुओं के प्रवेश द्वारा पैदा होने वाली बीमारियां ट्रायकोमोनिएसिस, विब्रियोसिस, ब्रूसेल्लोसिस, साल्मोनेल्लोसिस, लेप्टोस्पाइरोसिस, फफूंदी तथा अनेक वाइरल बीमारियां शामिल है।

**उपचार व रोकथाम :**

यदि पशु में गर्भपात के लक्षण शुरू हो गए हो तो उस में इसे रोक पाना कठिन होता है। अतः पशुपालकों को उन कारणों से दूर रहना चाहिए जिनसे गर्भपात होने की सम्भावना होती है। गर्भपात की रोकथाम के लिए हमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- ❖ गौशाला सदैव साफ–सुथरी रखनी चाहिए तथा उसमें बीच–बीच में कीटाणुनाशक दवा का छिड़काव करना चाहिए।
- ❖ गाभिन पशु की देखभाल का पूरा ध्यान रखना चाहिए तथा उसे चिकने फर्श पर नहीं बांधना चाहिए।
- ❖ गाभिन पशु की खुराक का पूरा ध्यान रखना चाहिए तथा उसे सन्तुलित आहार देना चाहिए।
- ❖ मद में आए पशु का सदैव प्रशिक्षित कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन द्वारा ही गर्भधान करना चाहिए।
- ❖ गर्भपात की सम्भावना होने पर शीघ्र पशु चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।
- ❖ यदि किसी पशु में गर्भपात हो गया हो तो उसकी सूचना नजदीकी पशु चिकित्सालय में देनी चाहिए ताकि इसके कारण का सही पता चल सके कि गिरे हुए बच्चे तथा जेर को गड्ढे में दबा देना चाहिए तथा गौशाला को ठीक प्रकार से कीटाणुनाशक दवा से साफ करना चाहिए।

**ब्याने के बाद जेर का न निकलना :**

गाय व भैंसों में ब्याने के बाद जेर का बाहर न निकलना अन्य पशुओं की अपेक्षा काफी ज्यादा पाया जाता है। सामान्यतः ब्याने के 3 से 8 घंटे के बीच जेर बाहर निकल जाती है, लेकिन कई बार 8 घंटे से अधिक समय बीतने के बाद भी जेर बाहर नहीं निकलती। कभी–कभी यह भी देखा गया है कि आधी जेर टूट कर निकल जाती है तथा आधी गर्भाशय में ही रह जाती है।

**कारण :**

जेर न निकलने के अनेक कारण हो सकते हैं। संक्रामक करणों में विब्रियोसिस, लेप्टोस्पाइरोसिस, टी.बी., फफूंदी, विरस तथा कई अन्य वाइरस तथा कई अन्य संक्रमण शामिल है लेकिन ब्रूसेल्लोसिस बीमारी में जेर न निकलने की डर सबसे अधिक होती है। असंक्रामक कारणों में असंक्रामक गर्भपात, समय से पहले प्रसव, जुड़वाँ बच्चे होना, कष्ट प्रसव, वृधा ब्यानेवस्था के बाद पशु को बहुत जल्दी गर्भित कराना, कुपोषण, हार्मोन्स का असंतुलन आदि प्रमुख है।

**लक्षण :**

गर्भाशय में जेर के रहने से अंदर सड़ने लगती है तथा योनि द्वार से बदबूदार लाल रंग का डिस्चार्ज निकलने लगता है। पशु की भूख कम हो जाती है तथा दूध का उत्पादन भी गिर जाता है। कभी–कभी उसे बुखार भी हो जाता है। गर्भाशय में संक्रमण के कारण पशु स्ट्रेनिंग (गर्भाशय को बाहर निकालने की कोशिश) करने लगता है जिससे योनि अथवा गर्भाशय तथा कई बार गुदा भी बाहर निकल आता हैं तथा बीमारी जटिल रूप ले लेती है।

**उपचार व रोकथाम :**

पशु की जेर को हाथ से निकालने के समय के बारे में विशेषज्ञों के अलग–अलग मत है। कई लोग ब्याने के 12 घंटे के बाद जेर से निकालने की सलाह देते हैं जबकि अन्य 72 घण्टों तक प्रतीक्षा करने के बाद जेर हाथ से निकलवाने की राय देते हैं। यदि जेर गर्भाशय में ढीली अवस्था में पड़ी है तो उसे हाथ द्वारा बाहर निकालने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन यदि जेर गर्भाशय से मजबूती से जुडी है तो इसे जबरदस्ती निकालने से रक्त स्राव होने तथा अन्य जटिल समस्यायें पैदा होने की पूरी सम्भावना रहती है। ब्याने के बाद ओक्सीटोसीन अथवा प्रोस्टाग्लेंड़िन एफ–2 एल्फा टीकों को लगाने से अधिकतर पशु जेर आसानी से गिरा देते हैं, लेकिन ये टीके पशु चिकित्सक की सलाह से ही लगवाने चाहिए। पशु की जेर हाथ से निकलने के बाद गर्भाशय में जीवाणु नाशक औषधि अवश्य रखनी चाहिए तथा उसे दवाइयां देने का क्रम पशु चिकित्सक से ही करवाना चाहिए, पशु पालक को स्वयं अथवा किसी अप्रशिक्षित व्यक्ति से यह कार्य नहीं करवाना चाहिए। पशु को गर्भावस्था में खनिज मिश्रण तथा सन्तुलित आहार अवश्य देना चाहिए। प्रसव से कुछ दिनों पहले पशु को विटामिन ई का टीका लगवाने से इस रोग से बचाव किया जा सकता है।

**गर्भाशय का बाहर आ जाना (प्रोलैप्स ऑफ यूटरस) :**

कई बार गाय व भैंसों में प्रसव के 4–6 घंटे के अंदर गर्भाशय बाहर निकल आता है जिसका उचित समय पर उपचार न होने पर स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कष्ट प्रसव के बाद गर्भाशय के बाहर निकलने की संभावना अधिक रहती है। इसमें गर्भाशय उल्टा होकर योनि से बाहर आ जाता हैं तथा पशु इसमें प्रायः बैठ जाता है। गर्भाशय तथा अंदर के अन्य अंगों को बाहर निकलने की कोशिश में पशु जोर लगाता रहता है जिससे कई बार गुद्दा भी बाहर आ जाता है तथा स्थिति और गम्भीर हो जाती है।

कारण गर्भाशय के बाहर निकलने के मुख्य कारण निम्नलिखित है–

(क) पशु की वृद्धावस्था।

(ख) कैल्शियम की कमी।

(ग) कष्ट प्रसव जिसके उपचार के लिए बच्चे को खींचना पड़ता है।

(घ) प्रसव से पूर्व योनि का बाहर आना।

(ङ) जेर का गर्भाशय से बाहर न निकलना।

**उपचार व रोकथाम :**

जैसे ही पशु में गर्भाशय के बाहर निकलने का पता चले उसे दूसरे पशुओं से अलग कर देना चाहिए ताकि बाहर निकले अंग को दूसरे पशुओं से नुकसान न हो, निकले अंग को गीले तौलिए अथवा चादर से ढक देना चाहिए तथा यदि संभव हो तो बाहर निकले अंग को योनि के लेवल से थोड़ा ऊँचा रखना चाहिए ताकि बाहर निकले अंग में खून इकट्ठा न हो। बाहर निकले अंग को अप्रशिक्षित व्यक्ति से अंदर नहीं करवाना चाहिए बल्कि उपचार हेतु शीघ्रताशीघ्र पशु चिकित्सक को बुलाना चाहिए। यदि पशु में कैल्शियम की कमी है तो उसे इंजेक्शन से व कैल्शियम बोरोग्लुकोनेट दिया जाता है। बाहर निकले अंग को कोसे गर्म पानी अथवा सेलाइन के पानी से ठीक प्रकार साफ कर लिया जाता है। यदि गर्भाशय के साथ जेर भी लगी हुई है तो उसे जबरदस्ती निकलने की आवश्यकता नहीं होती। हथेली के साथ सावधानीपूर्वक गर्भाशय को अंदर किया जाता है तथा उसे अपने स्थान पर रखने के उपरांत योनि द्वार में टांके लगा दिए जाते हैं। इसके बाद पशु को आवश्यकतानुसार कैल्शियम बोरोग्लुकोनेट, ओक्सीटोसीन तथा एंटीबायोटिक के टीके लगाये जा सकते हैं। इस बीमारी में यदि पशु का ठीक प्रकार से इलाज न करवाया जाए तो पशु स्थायी बांझपन का शिकार हो सकता है। अतः पशु पालक को इस बारे में कभी ढील नहीं बरतनी चाहिए।

# बकरी के दूध की मानव पोषण में भूमिका और इसकी चुनौतियाँ

**नेहा चौधरी[1], रूबी सिवाच[2] एवं इंदू पांचाल[2]**

[1]एकीकृत मधुमक्खी पालन विकास केन्द्र, रामनगर

[2]डेयरी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय,

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

बकरी का दूध स्वास्थ्य के लिए बेहद लाभकारी है। इसके शरीर के पोषण में अनेक लाभ है जिसके कारण इसे एक उत्कृष्ट भोजन माना गया है। बकरी के दूध से किसी भी प्रकार की एलर्जी नहीं होती है, इसलिए यह गाय के दूध से भी अधिक बेहतर माना जाता है। यह बकरी के दूध की बाजार सम्भावना को उजागर करता है। बकरी का दूध और इसके उत्पाद विकासशील देशों में भूखे और कूपोषित लोगों की आवश्यकता पूरी करने में गाय के दूध से बेहतर साबित हुये हैं। बकरी का दूध उन लोगों की मूलभूत आवश्यकता को भी पूरी करता है जोकि गाय के दूध से एलर्जी और जठरांत्रिय विकार से पीड़ित है। यह उपभोगक्ताओं की जठरांत्रिय आवश्यकताओं को पूरा करता है। बकरी और गाय के दूध में अद्वितीय क्रियात्मक और संरचनात्मक विभिन्नता है जिसके कारण इनकी संरचना भिन्न है। बकरी के दूध की विशिष्ट रासायनिक विशेषता के कारण इसे विभिन्न प्रकार के उत्पादों के निर्माण के लिए प्रयोग किया जा सकता है जैसे कि पेय द्रवित (कम वसा, फोरटीफाईड एवं फ्लेवर दूध) और यू.एच.टी. दूध, पनीर, छाछ, दही, मक्खन, सूखे दूध उत्पाद, मिठाई आदि बकरी के दूध का इस्तेमाल त्वचा की देखभाल एवं विभिन्न कॉस्मैटिक उत्पाद बनाने में भी किया जाता है। ये ध्यान देने वाली बात यह है कि एक उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद की संरचना केवल अच्छी गुणवत्ता के बकरी के दूध से ही हो सकती है और एक उच्च गुणवत्ता का दूध विभिन्न प्रसंस्करण उपचार को सहन करने के बाद भी अपने पोषण स्वच्छ और संवेदी गुणों को बनाये रखता है।

## बकरी के दूध की सरंचना

एक ताजा बकरी का दूध तरल, मीठा, बिना गंध के होता है। लेक्टियल ग्रन्थियों से लिए गए दूध की जल्दी खराब होने की सम्भावना रहती है, क्योंकि यह अनुचित हैंडलिंग से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। बकरी का दूध स्वाद और गंध में गाय के दूध के समान है। बकरी के दूध की उपज और सरंचना, नस्ल, उम्र, दूध, अवस्था और बकरी के पोषण पर निर्भर करती है। कैप्रोइकिक, कैप्राईलिक, कैप्रइक एसिड बकरी के दूध की वसा में उच्च स्तर में पाए जाते हैं और अनुचित तरीके से दूध के प्रबन्धन के कारण ये सभी वसा ग्लोबयुल झिल्ली से निकल जाते हैं।

## बकरी के दूध के स्वास्थ्य लाभ

बकरी का दूध एक सम्पूर्ण भोजन हैं। इसमें कम वसा होता है और इसमें शरीर में मौजूद एसिड और विषैले पदार्थों का बेअसर करने की क्षमता होती है, परन्तु बकरी के दूध के चिकित्सीय उपयोग के बारे में जानकारी और जागरूकता की कमी है। इसी कारण मानव पोषण में बकरी के दूध के मूल्यों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। गाय के दूध में एलर्जी के बढ़ते स्तर के कारण अनेक विकसित देशों में शिशुओं के लिए बकरी के दूध के अधिकतम प्रयोग को प्रोत्साहित किया गया है। बकरी के दूध के मुख्य संघटक गाय के दूध के समान होते है किन्तु भौतिक और रासायनिक गुण जैसे कि वसा ग्लोबल आकार, लघु और मध्यम श्रृंखला फेटी एसिड, सेलनियम और ग्लूटाथियोन पराक्सीडेस की उपस्थिति में भिन्न होता है।

## बकरी के दूध के लाभ

1. यह शिशुओं द्वारा आसानी से पचाया जा सकता है।
2. आयुर्वेद में अस्थमा, खांसी और मधुमेह जैसी बिमारियों के लिए बकरी का दूध बेहद लाभदायक साबित होता है।

3. इसमें प्रोटीन, गैर–प्रोटीन और फास्फेट होता है जिनकी वजह से इसमें बफरिंग के उच्च गुण होते हैं। बकरी का दूध पौष्टिक अल्सर, यकृत डिसफंक्शन, पीलिया और अन्य पाचन समस्याओं के इलाज के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

4. फैट ग्लोब्यूल्स आकार में छोटा हाता है। इसलिए लाइपेस एंजाईम के हमले से अधिक ग्रस्त होते हैं। इसके इलावा छोटे और मध्यम श्रृंखला फैटी एसिड जैसे कि कैप्रोइकिक, कैप्राईलिक, कैप्रईक एसिड उच्च मात्रा में पाये जाते हैं। जोकि कई रोगों के उपचार के लिए उपयोग करते हैं। ये फैटी एसिड कोलेस्ट्राल को भी शरीर में कम जमा होने देता है।

5. बकरी के दूध की खनिज सरंचना (मैगनीशियम, लोहा, ताम्बा, जस्ता और सेलेनियम) अधिक मात्रा में पाये जाते हैं जिसके कारण यह मासिक धर्म और गर्भवती महिलाओं के लिए बेहद फायदेमन्द है।

6. बकरी का दूध कोलेस्ट्राल के पित स्त्राव को बढ़ाता है।

7. यह शरीर में प्लाज्मा कोलेस्ट्राल की एकाग्रता को भी कम करता है।

इन सभी बकरी के दूध के पोषक मूल्य और स्वास्थ्य सम्बन्धी उपलब्धियों के कारण इसे क्रियाशील आहार भी कहा जाता है।

## बकरी के दूध के उत्पाद

बकरी के उत्पाद से कम वसा दूध और फ्लेवर दूध, मक्खन, दही, आईस–क्रीम, गाढ़ा दूध और सुखे दूध के उत्पादों की व्यापक विधि तैयार की जा सकती है, लेकिन बकरी के दूध की व्यापक इस्तेमाल बहुत कम है, क्योंकि व्यवसायिक रूप से गाय के दूध का इस्तेमाल अधिक किया जाता है। बकरी के दूध में लैक्टोज की मात्रा कम होती है। इसी के साथ इसमें अधिक क्लोराईड होने के कारण नमकीन स्वाद होता है, लेकिन नियमित उपभोक्ता को इनसे कोई समस्या नहीं होती। बकरी के दूध से पनीर बहुत अधिक संख्या में तैयार किया जाता है जैसे कि रिकोटा पनीर। हाल ही में कुछ देशों में बकरी के दूध से साबुन, क्रीम, लोशन, शैम्पू और बालों के कन्डीशनर जैसे कॉस्मैटिक उत्पाद भी अधिक मात्रा में तैयार किये जाते हैं।

## बकरी के दूध का उपयोग करने में चुनौतियां

बकरी के दूध के उत्पादन और उपयोग सम्बन्धी खोज में भारी कमी है, इस और ध्यान की आवश्यकता है। बकरी के दूध के संवेदक स्वीकार्यता इसकी एक महत्वपूर्ण गुणवत्ता मानक है, किन्तु दूध में बकरी के दूध जैसा स्वाद एक प्रमुख दोष है जोकि अनुचित हैंडलिंग के कारण विकसित होता है। इसके साथ–साथ बकरी का दूध का उत्पादन मौसमी होता है। इस समस्या को हल करने के लिए एक तकनीकि दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। एक सफल विपणन बकरी के दूध की खपत को बढ़ाने, उपभोक्ता की अवधारण को बदलने में और दूध की गुणवत्ता को सुधारने में मद्द कर सकता है।

## निष्कर्ष

अनेक देशों में बकरी के दूध का इस्तेमाल अधिक प्रचलित नहीं हैं, किन्तु ये मानव पोषण और स्वास्थ्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी के साथ यह कृषि राजस्व और आर्थिक व्यवहारिता प्रधान कर सकता है। बकरी का दूध और इसके उत्पाद एक कार्यात्मक भोजन के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, एक व्यापक डेयरी बकरी उद्योग के विकास के लिए उपभोक्ता शिक्षा, उचित वितरण और विपणन चैनलों की पहचान अति आवश्यक है।

# ब्याने से पूर्व, ब्याने के दौरान एवं ब्याने के बाद भैंसों की देखभाल

**सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह**

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

यद्यपि पशु का ब्याना एक सामान्य प्रक्रिया है परन्तु फिर भी एक फार्म प्रबन्धक को ब्याने के पूर्व, ब्याने के दौरान एवं ब्याने के बाद की सभी अवस्थाओं में पशु का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती हैं।

**ब्याने से पूर्व :** 5–6 माह के गाभिन पशु को गर्भ में बच्चे के विकास के लिये 2.0 कि.ग्रा. दाना अतिरिक्त देना आरम्भ कर देना चाहिये। साथ ही पर्याप्त मात्रा में हरा चारा, खनिज मिश्रण एवं सादा नमक भी खिलाना चाहिए जिससे पशु को संतुलित मात्रा में पोषक तत्व मिलते रहें। पशु के गर्भाधान की तारीख अवश्य नोट रखें जिससे ब्याने के सही समय की जानकारी रहे। ब्याने से पूर्व अग्रिम अवस्था के पशुओं को अन्य पशुओं से अलग करके पशु ब्याने के कक्ष में पहुँचा दें। कक्ष की पहले से ही सफाई करें एवं संक्रमण रहित करके साफ, मुलायम एवं सुखा बिछावन बिछा दें। पशु बाड़े में पशु के रहने की जगह आगे की तरफ नीची तथा पीछे की तरफ से ऊँची रखें जिससे बच्चेदानी बाहर आने (प्रोलेप्स ऑफ यूट्रस) की समस्या न हो।

अग्रिम गर्भावस्था में अधिक दूध देने वाले तथा प्रथम बार ब्याने वाले पशु मिल्क फीवर (दुग्ध ज्वर) नामक बीमारी से प्रभावित हो सकते हैं। अतः बचाव के लिये उन्हें नियमित रूप से पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन के आहार में खनिज मिश्रण के माध्यम से कैल्शियम अवश्य दें। साथ ही ब्याने से एक–दो सप्ताह पूर्व विटामिन डी की पर्याप्त मात्रा भी पशु को देना आरम्भ कर दें। ब्याने से लगभग 40 दिन पूर्व दुग्ध दोहन बन्द कर दें अन्यथा पशु ब्याने का समय आगे बढ़ सकता है और पशु कमजोर हो जाने से अगले ब्यांत में उत्पादन घट जाने की सम्भावना हो जाती है। पशु ब्याने से पूर्व अयन का बड़ा हो जाना, यानि का आकार बढ़ जाना तथा उससे तोड़ा गिरना एवं पशु का बेचैन होना और खाना कम कर देना आदि सामान्य लक्षण है इनका निरीक्षण करते रहना आवश्यक है। इस दौरान पशु बार–बार उठता बैठता है प्रसव पीड़ा के कारण बेचैन रहता है। पशुओं के ब्याने की तिथि के पूर्व प्रसव के लक्षण के आधार पर पशु को स्वच्छ स्थान पर रखकर एक सुरक्षित दूरी बनाकर पशु को बिना परेशान किये उस पर नजर रखनी चाहिये।

**ब्याने के दौरान :** प्रायः यह समय 2–3 घंटे का होता है परन्तु प्रथम बार ब्याने में 4–5 घण्टे या कुछ अधिक हो सकता है। एक सुरक्षित दूरी बनाकर पशु का निरीक्षण करते रहना अत्यन्त आवश्यक है। भ्रूण के बाहर निकलने की अवस्था में निरीक्षण करते रहना आवश्यक है। ध्यान रखे कि पहले पानी की थैली बाहर आयेगी जिसके फटने पर बच्चे के दोनों पैरों के खुर तथा मुँह बाहर निकलता दिखेगा यह प्रसव की सामान्य स्थिति है। सामान्य स्थिति के प्रसव के किसी भी प्रकार के अन्य लक्षण दिखने या किसी अन्य प्रकार से बच्चे के बाहर आने की स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन डिस्टोकिया के लक्षण हो सकते है। ऐसी अवस्था में तुरन्त पशु चिकित्सक की मदद लें।

**ब्याने के बाद :** बच्चे को जन्म देने के उपरान्त मादा उसे चाट–चाट कर साफ करती है। जन्म के बाद बच्चे के शरीर की सफाई करें। नवजात बच्चे की नाल को नाभि से 2 इंच दूरी से बांध देते हैं तत्पश्चात स्वच्छ एवं जीवाणु रहित ब्लेड़ से काटकर कीटाणुनाशक दवा टिन्चर आयोडीन का फोहा लगा देते हैं। जन्म के आधे से एक घंटे के भीतर बच्चे को पहला दूध (खीस अथवा कोलस्ट्रम) अवश्य पिलायें। नवजात को दी जाने वाली खीस की मात्रा इसके शारीरिक भार पर निर्भर करती है। शारीरिक भार का 10 प्रतिशत खीस प्रतिदिन 2–3 बार में देना चाहिए। इससे बच्चे में बीमारियों के प्रतिरोधक क्षमता विकसित होगी। सामान्य परिस्थितियों में बच्चे के जन्म के 5–6 घण्टे में जेर बाहर आ जाती है परन्तु यदि 6–7 घण्टे तक पशु जेर नहीं डालता है तो तुरन्त पशु चिकित्सक की सलाह लेकर आवश्यकतानुसार उपचार करें।

जेर के गिरते ही उसे पशु बाड़े से तुरन्त हटा लें

जिससे पशु उसे खा न सके। पशु को हल्का गुनगुना पानी पिलायें। जेर को जमीन में दबा कर इसका उचित प्रकार से निस्तारण करें। एन्टीसेप्टिक मिलाकर स्वच्छ गुनगुने पानी से पशु के शरीर को साफ करें तथा पशु शरीर के पिछले भाग में सरसों या नारियल तेल से मालिश करें। जीरा या खाँड में नमक, चोकर मिलाकर पशु को देने से पशु को तुरन्त उर्जा मिलती है। पशु के दूध दोहन में सावधानी रखें। ब्याने के बाद प्रथम दुग्ध दोहन में ध्यान दें कि थनों की सभी रूकावटें साफ हो जाये। अधिक दूध देने वाले पशुओं का सारा दूध एक बार में न निकालें नहीं तो दुग्ध ज्वर की संभावना बढ़ जाती है। अगले दिन से दूध पूरा निकालना आरम्भ कर दें। पशु को पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम, फॉस्फोरस युक्त आहार तथा खनिज लवण प्रदान करें। पशु को दूध उतारने वाले, सुपाच्य एवं पोषक आहार जैसे गेहूँ का चोकर, जई एवं अलसी का दाना अवश्य देते रहें। पशु राशन में डी. सी.पी. 16–18 प्रतिशत तथा टी.डी.एन. 70 प्रतिशत होनी चाहिये। सामान्य नमक 1 प्रतिशत की दर से दाने में मिलाये साथ ही पशु को खनिज मिश्रण 50–60 ग्राम प्रतिदिन अवश्य दें। रसीला, सुपाच्य हरा चारा जिसमें 50–60 प्रतिशत दलहनी हरा चारा हो, पशु को देना चाहिये। दाना मिश्रण की मात्रा भी दुग्ध उत्पादन बढ़ने के साथ–साथ आवश्यकतानुसार धीरे–धीरे बढ़ा देनी चाहिये।

यदि पशुपालक भाई उपरोक्त बातों का ध्यान रखेंगे तो दुग्ध उत्पादन एवं स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा और अधिक से अधिक आर्थिक लाभ मिलता रहेगा।

# विस्तार शिक्षा निदेशालय

## लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

## प्रमुख गतिविधियाँ

1. **पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम**
2. **पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)**
3. **नि:शुल्क SMS सेवा**
4. **पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री**
   **(पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)**

# पशुओं में बांझपन- कारण और उपचार

**केदार कार्की**

सेन्ट्रल लुजोन स्टेट यूनिवर्सिटी, फिलिपिन्स

वेटरनरी हेल्थ मैनेजमेंट कन्सलटेन्ट अस्ट्रीच नेपाल प्रा.लि., लुम्वीनी, नेपाल

डेयरी फार्मिंग और डेयरी उद्योग में बड़े नुकसान के लिए पशुओं का बांझपन ज़िम्मेदार है। बांझ पशु को पालना एक आर्थिक बोझ होता है और ज्यादातर देशों में ऐसे जानवरों को बूचड़खानों में भेज दिया जाता है। पशुओं में दूध देने के 10–30 प्रतिशत मामले बांझपन और प्रजनन विकारों से प्रभावित हो सकते हैं। अच्छा प्रजनन या बछड़े प्राप्त होने की उच्च दर हासिल करने के लिए नर और मादा दोनों पशुओं को अच्छी तरह से खिलाया–पिलाया जाना चाहिए और रोगों से मुक्त रखा जाना चाहिए।

### पशुओं में बांझपन के कारण

बांझपन के कारण कई हैं और वे जटिल हो सकते हैं। बांझपन या गर्भ धारण कर एक बच्चे को जन्म देने में विफलता, मादा में कुपोषण, संक्रमण, जन्मजात दोषों, प्रबंधन त्रुटियों और अंडाणुओं या हार्मोनों के असंतुलन के कारण हो सकती है।

### यौन चक्र

गायों और भैंसों दोनों का यौन (कामोत्तेजना) 18–21 दिन में एक बार 18–24 घंटे के लिए होता है। लेकिन भैंस में, चक्र गुपचुप तरीके से होता है और किसानों के लिए एक बड़ी समस्या प्रस्तुत करता है। किसानों के सुबह से देर रात तक 4–5 बार जानवरों की सघन निगरानी करनी चाहिए। उत्तेजना का गलत अनुमान बांझपन के स्तर में वृद्धि कर सकता है। उत्तेजित पशुओं में दृश्य लक्षणों का अनुमान लगाना काफी कौशलपूर्ण बात है जो किसान अच्छा रिकॉर्ड बनाए रखते हैं और जानवरों की हरकतें देखने में अधिक समय बिताते हैं, बेहतर परिणाम प्राप्त करते हैं।

### बांझपन से बचने के लिए युक्तियाँ

- ब्रीडिंग कामोत्तेजना अवधि के दौरान की जानी चाहिए।
- जो पशु कामोत्तेजना नहीं दिखाते हैं या जिन्हें चक्र नहीं आ रहा हो, उनकी जाँच कर इलाज किया जाना चाहिए।
- कीड़ों से प्रभावित होने पर छः महीने में एक बार पशुओं का कृमिनाशक से उनका स्वास्थ्य ठीक रखा जाना चाहिए। सावधिक कृमिनाशक में एक छोटा सा निवेश, डेरी उत्पाद प्राप्त करने में अधिक लाभ ला सकता है।
- पशुओं को ऊर्जा के साथ प्रोटीन, खनिज और विटामिन की आपूर्ति करने वाला एक अच्छी तरह से संतुलित आहार दिया जाना चाहिए। यह गर्भाधान की दर में वृद्धि करता है, स्वस्थ गर्भावस्था, सुरक्षित प्रसव सुनिश्चित करता है, संक्रमण की घटनाओं को कम और एक स्वस्थ बछड़ा होने में मदद करता है।
- अच्छे पोषण के साथ युवा मादा बछड़ों की देखभाल उन्हें 230–250 किलोग्राम शरीर के वजन के साथ सही समय में यौवन प्राप्त करने में मदद करता है, जो प्रजनन और इस तरह बेहतर गर्भाधान के लिए उपयुक्त होता है।
- गर्भावस्था के दौरान हरे चारे की पर्याप्त मात्रा देने से नवजात बछड़ों को अंधेपन से बचाया जा सकता है और (जन्म के बाद) नाल को बरकरार रखा जा सकता है।
- बछड़े के जन्मजात दोष और संक्रमण से बचने के लिए सामान्य रूप से सेवा लेते समय सांड के प्रजनन इतिहास की जानकारी बहुत महत्वपूर्ण है।

### मादा पशुओं के प्रमुख प्रजनन विकार :

### रिपीट ब्रिडिंग (पशु का बार–बार गर्मी में आना)–

प्रजनन का यह विकार पशुपालकों तथा कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियनों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे पशुपालकों को पशु के गर्भ धारण कर पाने के कारण बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। इसमें पशु दो या दो से अधिक बार गर्भाधान करने के बावजूद गर्भधारण नहीं कर पाता तथा अपने नियमित मदचक्र में बना रहता है। सामान्य परीक्षण के दौरान वह लगभग निःरोग लगता है।

रिपीट ब्रिडिंग के अनेक कारण हो सकते हैं जिनमें से निम्नलिखित कारण प्रमुख है–

**(क) पशु की प्रजनन नली में वंशानुगत, जन्म से अथवा जन्म के बाद होने वाले विकार :** इनमें प्रजनन नली के अंगों में किसी एक खंड का होना, अंडाशय का बरसा के साथ जुड़ जाना, अंडाशय में रसौली, गर्भाशय

ग्रीवा का टेढ़ा होना, डिम्ब वाहनियों में अवरोध का होना, गर्भाशय की अंदर की परत में विकार आदि शामिल है।

(ख) **शुक्राणुओं, अंडाणु तथा प्रारम्भिक भ्रूण में वंशानुगत, जन्मजात तथा जन्म के बाद होने वाले विकार :** इनमें काफी देर से अथवा मदकाल के समाप्त होने पर गर्भाधान कराने के कारण अंडाणु का निषेचन योग्य समय निकल जाना, अंडाणु अथवा शुक्राणु में विकार, एक ही सांड के वीर्य का कई पीढियों में प्रयोग, शुक्राणु व अंडाणु में मेल न होना, मदकाल की प्रारम्भिक अवस्था में गर्भाधान कराना जिससे अंडाणु के पहुंचने तक शुक्राणु पुराने हो जाते हैं, आदि प्रमुख हैं।

(ग) **पशु प्रबंध में कमियाँ :** इनमें पशुपालक द्वारा पशु के मदकाल में होने का सही पता न लगा पाना, अकुशल व्यक्ति से कृत्रिम गर्भाधान करना, पशु के कुपोषण तथा पशु में तनाव इत्यादि शामिल है।

(घ) **अंतः स्त्रावी विकार :** इनमें अंडाणु का अंडाशय से बाहर न आना, फोलिकल का समय हो जाना अंडाणु का अंडाशय से बाहर आना, सिस्टिकओवरी, कोरपस ल्युटियम का असक्षम होना आदि शामिल है।

(ङ) **प्रजनन अंगों के संक्रामक रोग अथवा उनकी सूजन :** इन रोगों में ट्रायकोमोनास फीटस, विब्रियो फीटस, ब्रुसेलोसिस, आई.बी.आर–आई.पी.वी. कोरिनी बैक्टेरियम पायोजनीज तथा अन्य जीवाणु व विषाणु शामिल है। इसमें गर्भाशय में सूजन हो जाती है जिससे भ्रूण की प्रारम्भिक अवस्था में ही मृत्यु हो जाती है।

**उपचार व निवारण :**

1. रिपीट ब्रीडर पशु का परीक्षण व उपचार पशु चिकित्सक से कराना चाहिए ताकि इसके कारण का सही पता लग सके। ऐसे पशु को कई बार परीक्षण के लिये बुलाना पड़ सकता है क्योंकि एक बार पशु को देखने से पशु चिकित्सक का किसी खास नतीजे पर पहुंचना कठिन होता है। अंडाशय से अंडाणु निकलता है या नहीं इसका पता पशु का मद काल के 10 दिन के बाद पुनः परीक्षण करके लगाया जा सकता है। दस दिन के बाद परीक्षण करने पर पशु की ओर भी बहुत–सी बीमारियों का पता पशु चिकित्सक लगा सकते हैं। अतः पशु चिकित्सक की सलाह पर पशु को उसके परीक्षण तथा इलाज के लिये अवश्य लाना चाहिये।
2. डिम्ब वाहनियों में अवरोध जोकि रिपीट ब्रीडिंग का एक मुख्य कारण है का पता एक विशेष तकनीक जिसे मोडिफाइड पी.एस.पी. टेस्ट कहते हैं, द्वारा लगाया जा सकता हैं। अतः स्रावी विकार के लिए कुछ विशेष हारमोन्स जी.ए.आर.एच. अथवा एल.एच. आदि लगाए जाते हैं।
3. मद काल में पशु के गर्भाशय से म्यूकस एकत्रित कर सी.एस.ति. परीक्षण के लिए भेजा जा सकता है जिससे गर्भाशय के अंदर रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं का पता लग जाता हैं तथा उन पर असर करने वाली दवा का भी ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार उस दवा के पीने से गर्भाशय के संक्रमण को नियन्त्रित किया जा सकता है।
4. पशु के मद काल का पशुपालक को विशेष ध्यान रखना चाहिए इसके लिए उसे पशु में मद के लक्षणों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, ताकि वह पशु का मद की सही अवस्था (द्वितीय अर्ध भाग) में गर्भाधान करा सके।
5. पशुपालक को पशु के सही मद अवस्था में न होने की दिशा में उसका जबरदस्ती गर्भाधान नहीं करना चाहिए तथा कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन को भी अनावश्यक रूप से पशु को टीका नहीं लगाना चाहिए क्योंकि इससे रिपीट ब्रीडर की संख्या बढ़ती है और पशु को कई और बीमारियां होने का खतरा बढ़ जाता है।
6. रिपीट ब्रीडर पशु को गर्भाशय ग्रीवा के मध्य में गर्भाधान करना उचित है क्योंकि कुछ पशुओं में गर्भधारण के बाद भी मदचक्र जारी रहता है। ऐसे पशु का गर्भाशय के अंदर गर्भाधान करने से भ्रूण की मृत्यु की पूरी सम्भावना रहती है।
7. पशुपालक को पशु की खुराक पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कुपोषण के शिकार पशु की प्रजनन क्षमता कम हो जाती है। पशु में खनिज मिश्रण व विटामिन्स ई आदि की कमी से प्रजनन विकार उत्पन्न हो जाते हैं।
8. देर से अंडा छोड़ने वाले पशु में 24 घंटे के अंतराल पर 2–3 बार गर्भाधान कराने से अच्छे परीक्षण मिलते हैं।

# नवजात भेड़ के बच्चे के साथ जटिलताएं व रोकथाम

**लक्ष्मी बाई[1], प्रीती[2] एवं रामकरण[3]**

[1]पशु चिकित्सा औषधि विभाग, [2]पशु चिकित्सा जन स्वास्थ्य विभाग,
[3]पशु चिकित्सा शरीर क्रिया विज्ञान और जैव रसायन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

1. **नवजात भेड़ के मृत्यु के प्रमुख कारण है :–** 1. भूख, 2. अल्पतापवस्था, 3. दस्त एवं 4. निमोनिया

भेड़ प्रयोग अध्ययन के एक अध्ययन से पता चला है कि भेड़ के बच्चे की मृत्यु में 46 प्रतिशत दस्त, 20 प्रतिशत भुख और 8 प्रतिशत निमोनिया का योगदान है।

कठिन और लम्बे समय तक जो भेड़ के बच्चे बर्थिंग एपिसोड का अनुभव करते हैं वे स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनात्मक होते हैं और ना ही पर्याप्त कोलोस्ट्रम ले पाते हैं।

**अल्पतापवस्था (हाइपोथार्मिया)**

हाइपोथार्मिया को कम शरीर का तापमान के रूप में परिभाषित किया गया हैं अपने शरीर के तापमान को बनाए रखने के लिए, एक नवजात भेड़ के बच्चे को ज्यादा गर्मी का उत्पादन करना चाहिए क्योंकि यह लगातार पर्यावरण में अपनी गरमी खो रहा होता है। एक छोटा मेमना एक बड़े मेमने की तुलना में तेजी से ठंडा होगा एवं मो कोट का मेमना भी कम गर्मी खोयेगा।

जितनी जल्दी भेड़ चाटकर बच्चे को साफ करेगी, उतना ही मेमना ठंड से बचा रहेगा। जो मेमने बाहर पैदा हुए है वो जल्दी गर्मी खो देते है ठंड में पैदा होने वाले मेमने स्पष्ट रूप से मध्यम गर्मी के दौरान पैदा होने वाले बच्चों की तुलना में अधिक तेजी से शरीर की गर्मी खो देते हैं।

हाईपोथार्मिया से पीड़ित मेमने कमजोर दिखाई पड़ते हैं, सिर को लटका कर रखते हैं। कान व मुंह ठंडा पड़ जाता है। मेमनें के शरीर का सामान्य तापमान 102–103 डिग्री सेल्सियस होता है। 100 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान वाले मेमने हाइपोर्थमिक माने जाते है। शरीर के तापमान का मूल्यांकन करने के लिए एक गुदा थर्मामीटर का उपयोग किया जा सकता है। शरीर के तापमान को सामान्य लाने के लिए हाइपोर्थमिक मेमने को कोलोस्ट्रम देना महत्वपूर्ण है।

**रोकथाम :**

- ट्यूब फीडिंग के माध्यम से कोलोस्ट्रम देना चाहिए।
- शरीर के तापमान को सामान्य तक लाने के लिए मेमने को गर्म करने के कई तरीके हैं यदि भेड़ का बच्चा गीला है तो उसे सूखे तौलिये से लपेटना चाहिए। हेयर ड्रायर का इस्तेमाल भी किया जा सकता है। मेमने को वार्मिंग बॉथ में भी रखा जा सकता है। नवजात भेड़ के बच्चे में हाइपोथर्मिया आमतौर पर जोखिम से निकलता है। 24 घंटे से अधिक उम्र के मेमने में हाईपोथर्मिया आमतौर पर भूखमरी का नतीजा है। वृद्ध भेड़ के बच्चे को भी एक समान तरीके से संभालना चाहिए, इसके अलावा उन्हें कोलोस्ट्रम की आवश्यकता नहीं है। इन्हें दूध के पूरक को बोतल या ट्यूब फीडर के साथ खिलाया जा सकता है।

**भूखमरी :** यह कई करणों से हो सकती है–

कोलोस्ट्रम का अपर्याप्त सेवन, बांध, स्टन की सूजन, टीट्स जो बहुत बड़ी है या जमीन के करीब हैं, अपर्याप्त दूध उत्पादन संयुक्त चोट या बीमारी, पीड़ादायक भूखमरी आमतौर पर जीवन के पहले 3 दिनों में होती है। मेमना सिर नीचे किए और कान पीछे किए हुए खड़ा मिलेगा और कमजोर दिखेगा। पेट पर हाथ लगाने पर पेट खाली मिलेगा। कंपकपी, शरीर का हिलना और हाइपोथर्मिया जैसे लक्षण दिखाई देते हैं लेकिन यह हाइपोथर्मिक मेमना 12 घंटे से ज्यादा उम्र का होता है।

**दस्त (स्कॉर्स) :** इसका प्रमुख कारण बैक्टीरिया है–

ई–कोलाई, साल्मोनेला या क्लॉस्ट्रिडियम प्रफ्रीजंन प्रकार सी। कोलोस्ट्रम का पर्याप्त सेवन स्कॉर्स के खिलाफ

सर्वश्रेश्ठ संरक्षण है।

**रोकथाम :**

- ❖ स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।
- ❖ बैक्टीरियल स्कॉर्स का इलाज एंटीबायोटिक और तरल पदार्थ चिकित्सा के साथ किया जाता है।

**निमोनिया :**

मेमनों में निमोनिया मुख्य रूप बैक्टीरियम पाश्चुरेला हेमोलिटिका व कभी–कभी मायकोप्लास्मा से भी होता है। इसके प्रमुख लक्षण है बुखार, श्वसन दर में वृद्धि और अनुपचारित मामलों में मृत्यु भी हो सकती है। कोलोस्ट्रम की कमी इसका मुख्य कारण है।

**रोकथाम :**

- ❖ हवादार वातावरण का अभाव ही निमोनिया की समस्या को जन्म देता है इसलिए हवा का प्रबंन्ध व आवगमन सही होना चाहिए। निमोनिया घर में रहने वाले मेमनों की तुलना में जो मेमने घास पर आश्रित होते है उनमें कम होता है।
- ❖ निमोनिया को ठीक करने के लिऐ टेट्रासाईक्लीन, पैनीसिलीन का प्रयोग किया जाता है।

# विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

| क्र.सं. | पशु विज्ञान केन्द्र |
|---|---|
| 1. | पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल |
| 2. | पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत |
| 3. | पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद |
| 4. | पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा |
| 5. | पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी |
| 6. | पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक |
| 7. | पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी |
| 8. | पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव |
| 9. | विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार |
| 10. | पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला |

# पशु चिकित्सा कर्मियों की कोविड–19 महामारी में आपदा प्रबंधन की भूमिका

**हरप्रीत सिंह[1], सुजॉय खन्ना एवं देवेंद्र सिंह[2]**

[1]हरियाणा पशु विज्ञान केन्द्र, करनाल एवं [2]हरियाणा पशु विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

विश्वव्यापी कोविड–19 महामारी हाल ही में खोजे गये आर.एन.ए. नोवेल कोरोना वायरस के संक्रमण से होता है जो अभी भी बहुत तेज गति से मनुष्यों से मनुष्यों में फैल रहा है। इस वायरस का 75 से 80 प्रतिशत जिनोम सार्स वायरस के जिनोम से मेल और इसके जैसे लक्षण उत्पन्न करता है जिस कारण इस वायरस को सार्स कोरोना वायरस–2 भी कहा जाता है।

### मनुष्यों में रोग के लक्षण

कोविड–19 रोग के कारण मनुष्यों में श्वास नली में संक्रमण होने पर बुखार, खाँसी, गले में खराश, सिर दर्द आदि सामान्य लक्षण देखने को मिलते हैं। इसके बाद रोगी को सांस लेने में तकलीफ या तेज–तेज सांस चलना, खाँसी जैसे लक्षण दिखायी देते हैं जो आमतौर पर बच्चों में ज्यादा दिखायी देते हैं। लेकिन ज्यादातर व्यस्कों में बुखार, सांस संबंधी लक्षण होते हैं। यदि यह स्थिति बच्चों में हो जाती है तो उन्हें खाँसी, माँ का दूध और पेय पदार्थ लेने असक्षमता, शारीरिक थकान और तेज सांस इत्यादि लक्षण दिखायी देते हैं। रोगी की शारीरिक स्थिति और गंभीर होने पर एक्युट रेस्पायरेटरी डिस्ट्रेस सिंड्रोम हो जाता है। रोगी की स्थिति बिगड़ने पर उसके शरीर के अन्य अंग भी प्रभावित होने लगते हैं। वयस्कों में मानसिक स्थिरता भंग होना, सांस लेने में परेशानी, मूत्र विसर्जन में कमी, तेज हृदय गति या निम्न रक्तचाप, तेज ठण्ड लगना इत्यादि सम्मिलित हैं। वहीं बच्चों में तापमान और श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या में असमानता दिखायी देती है। अत्याधिक गंभीर अवस्था के दौरान वयस्कों में उच्च रक्तचाप बने रहना, तो वहीं बच्चे में मानसिक भ्रम एवं उच्च रक्तचाप लक्षण होते हैं।

### रोग से बचाव

कोविड–19 के संक्रमण के कारण मनुष्यों में तीव्र गति से संक्रमण होता है लेकिन आंकड़ों के अनुसार मृत्युदर बहुत कम है। किसी भी व्यक्ति विशेष को इस महामारी को हल्के में नहीं लेना चाहिए क्योंकि दुनियाभर में कोविड–19 के चल रहे परीक्षणों में अलाक्षणिक मरीजों का अनुपात काफी संख्या में पाया गया है। ऐसे व्यक्ति अधिकतर व्यस्क ही होते हैं। इस रोग के संक्रमण से बचने लिए फेस मास्क पहनने के साथ–साथ एक–दूसरे से 2 मीटर की दूरी, बार–बार कम से कम 20 सेकण्ड तक हाथों को साबुन–पानी से धोना, आवश्यक हो तो हाथों में दस्ताने भी पहनें, भीड़ वाले क्षेत्रों से जाने से बचना, अफवाहों की ओर ध्यान न देना इत्यादि से ही बचाव संभव है।

### पशुओं में कोविड–19

हालांकि, दिसंबर 2019 के अंत में मनुष्यों को प्रभावित करने वाले इस रोग के पशुओं खासतौर से कुत्तों, बिल्लियों, बाघ को संक्रमित करने के कुछ प्रमाण अवश्य मिले हैं लेकिन अभी तक पशुओं से मनुष्यों में फैलने के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं लेकिन पशुओं में अन्य कई तरह के कोरोना वायरस अवश्य ही हैं जो आसानी से पशुओं एवं मनुष्यों को प्रभावित करते आये हैं। अतः यह ध्यान देने योग्य बात है कि कोविड –19 संक्रमित रोगियों को पशुओं के संपर्क में आने से बचना चाहिए अन्यथा इस वायरस के पशुओं में प्रवेशोप्रांत आनुवंशिक परिवर्तन होने के बाद गंभीर उपभेद पैदा होने की संभावना से नहीं नकारा जा सकता है।

### पशु स्वास्थ्य कर्मियों की पशु सेवा

पशुओं के कोराना वायरस का संक्रमण एवं इस महामारी के दौरान पशुपालकों को होने वाली समस्याओं को कम करने के लिए पशु स्वास्थ्य कर्मियों की विशेष भूमिका रही है जो विश्वव्यापी महामारी काल में भी बेजुबान पशुओं की सेवा करके पशुपालकों को पूर्ण सहयोग दे रहे हैं। बेशक, अभी तक किसी भी पशु स्वास्थ्य कर्मी की यह रोग रिपोर्ट नहीं हुआ है लेकिन उचित बचावों की अनदेखी भी नहीं करें।

### पशु स्वास्थ्य कर्मियों पशुपालक प्रेम

इस मुश्किल दौर में भी पशुपालकों की सेवा के लिए

उनके पशुधन उत्पादों को बढ़ावा देते रहें। हालांकि ग्रामीण आंचल में पशुओं के लिए हरे चारे की परेशानी प्रतीत नहीं हो रही है लेकिन दाना–मिश्रण के लिए उनको बाजार पर निर्भर रहना पड़ता है जहाँ उनको आसानी से कोविड–19 का संक्रमण होने का खतरा है और उनके संपर्क में आने से पशु स्वास्थ्य कर्मी भी इस रोग की चपेट में आ सकते हैं। अतः पशुपालकों को आगाह करते रहें कि जब भी घर बाहर निकलें तो मुंह पर फेस मास्क अवश्य पहनें, बाजार में खरीदारी करते समय एक–दूसरे से दो मीटर की दूरी अवश्य रखें, विभिन्न सतहों को छूने से बचें, समय–समय पर अपने हाथ साबुन–पानी से धोएं और हाथों पर हैंड सेनेटाइजर लगाते रहें, एक–दूसरे से हाथ मिलाने की बजाय हाथ जोड़ कर प्रणाम करें और हाथ उठा कर ही अभिवादन करें। इसी प्रकार पशु स्वास्थ्य कर्मी भी इन बातों का अनुसरण करें। यह तथ्य है कि "कल जिंदा थे तभी आज हैं, आज हैं तभी तो कल होंगें, नहीं तो कल किसने देखा कि बचे रहेंगे।

**पशुस्वास्थ्य कर्मियों कोविड–19 महामारी आपदा प्रबंधन**

हालांकि समय–समय पर विभागीय प्रशिक्षणों के माध्यम से पशु स्वास्थ्य कर्मियों को विभिन्न प्रकार के संक्रामक रोगों से बचाव हेतु आपदा प्रबंधन का प्रशिक्षण दिया जाता है। फिर भी, कोविड–19 महामारी के इस दौर में पशु चिकित्सा कर्मी अपने आप को बचाते हुए पशुपालकों के हित में पशु आपदा प्रबंधन में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें:–

- पशु चिकित्सा कर्मी फेस मास्क, दस्ताने तथा डांगरी या अप्रेन अवश्य पहनें, यदि संभव हो तो इन्हें हस्पताल से आते समय, हस्पताल में ही उतार कर साबुन–पानी से धोएं।
- बार–बार गुनगुना (हल्का गर्म पानी) पीते रहें।
- अपने पशुओं का उपचार करवाने के लिए हस्पताल में आये पशुपालकों को एक–एक करके ही अन्दर आने दें और उसके पशु का उपचार होने के बाद ही दूसरे का प्रवेश करवाएं।
- एक उपचाराधीन पशु के साथ कम से कम व्यक्तियों को ही अन्दर आने दें।
- पशु हस्पताल में ज्यादा पशुपालकों को एकत्रित न होने दें।
- पशुपालकों के हस्पताल में प्रवेशोप्रांत उनके हाथों पर हैंड सेनेटाइजर अवश्य लगवाएं।
- पशु हस्पताल के प्रांगण में नियमित रोगाणु नाशक घोल का छिड़काव करवाते रहें।
- हस्पताल में हाथ धोने के लिए साबुन–पानी का उपयोग बार–बार करते रहें और हैंड सेनेटाइजर को अपने हाथों पर बार–बार लगाते रहें।
- पशुपालकों, स्वयं एवं स्टाफ को हस्पताल की दीवारों एवं अन्य वस्तुओं को छूने से परहेज करें।
- पशुपालकों से बातचीत करते समय दो मीटर की दूरी अवश्य रखें।
- यदि किसी कारणवश पशुपालकों से कुर्सी पर बैठकर बातचीत होती है तो उन कुर्सियों को पशुपालकों के हस्पताल से बाहर जाते ही जीवाणुरहित अवश्य करें।
- पशु हस्पताल में आये पशुओं को छूने से पहले और बाद में साबुन–पानी से हाथ अवश्य धोएं एवं हाथों पर सेनेटाइजर अवश्य लगाएं।
- तालाबंधी के कारण पशुपालकों को आर्थिक मंदी जैसी परिस्थितियों का सामना भी करना पड़ रहा है। अतः ऐसे समय में उनके पशुओं के इलाज में भी आर्थिक समस्या को ध्यान में अवश्य रखें।
- यदि पशुओं के इलाज के लिए पशुपालक के घर द्वार जाना ही पड़े तो उचित सावधानी बरतनें की कोशिश अवश्य करें और अनावश्यक अन्य लोगों से न मिलें।
- हस्पताल के कार्यों को निपटाने के बाद घर पहुंचने से पहले घर पर फोन पर घर आने की सूचना दें और घर में प्रवेश करने से पहले अपने सामान इत्यादि को बाहर ही रख कर जीवाणुरहित करें और नहाने के लिए बाथरूम में जाते समय घर के दरवाजे, कुण्डे इत्यादि और अन्य सामान को नहीं छूएं और नहाने से पहले साबुन–पानी से अपने हाथों को कम से कम 20 सेकण्ड तक अवश्य धोएं। नहाने से पहले अपने कपड़ों को एक बाल्टी में डिट्रजेंटयुक्त पानी में डाल दें। नहाने के बाद फिर से अपने हाथों पर हैंड सेनेटाइजर लगाएं और कुछ समय बीत जाने के बाद ही परिवार के सदस्यों से मिलें।
- रोग की संभावना होने के परिस्थिति में अपना परीक्षण अवश्य करवाएं।

अंत में यही कहा जा सकता है कि इस विश्वव्यापी कोविड–19 महामारी से जंग जीतने के लिए स्वयं भी बचें और दूसरों को भी बचाएं।

डरो ना कोरोना के वार से, समझो कोरोना के वार को।
फेस मास्क और साबुन पानी से, निष्क्रिय करें कोरोना के परहार को।।

# जलवायु परिवर्तनः कृषि एवं पशुधन उत्पादकता पर इसके प्रभाव

**सतपाल[1], नीलम[2] एवं निशा[3]**

[1]चारा अनुभाग, अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, [2]सस्य विज्ञान विभाग, [3]बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

कृषि उत्पादन जलवायु परिवर्तन और मौसम पर सीधे निर्भर है। तापमान, वर्षा और कार्बन–डाइ–ऑक्साइड में संभावित परिवर्तन फसल की वृद्धि को भी सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। सफल अनुकूलन (ऐडेपटेशन) व पर्याप्त सिंचाई के बावजूद दुनिया भर में खाद्य उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का समग्र प्रभाव है जो कि अलग–अलग स्थानों पर कहीं कम तो कहीं मध्यम स्तर का माना जा रहा है। जलवायु परिवर्तन की वजह से भारत में भी तापमान में अधिक मौसमी बदलाव अनुभव होने लगे हैं व पिछले सालों की तुलना में सर्दियों में अधिक गर्मी होने के साथ–साथ गर्मियों में भी तापमान में भिन्नता होने लगी है। भारत ने 1891 से 2009 तक बड़े पैमाने पर 23 बार सूखे का अनुभव किया है और सूखे की आवृत्ति बढ़ रही है। जलवायु परिवर्तन कृषि और खाद्य के लिए बहुत बड़ा खतरा है सुरक्षा। भारत में पानी सबसे महत्वपूर्ण कृषि इनपुट है कुल खेती वाले क्षेत्र में से 55 प्रतिशत पर अभी भी सिंचाई की सुविधा नहीं है। वर्तमान में हम इन भिन्नताओं के बावजूद खाद्य आपूर्ति को सुरक्षित करने में सक्षम हैं। सभी जलवायु मॉडल भविष्यवाणी करते हैं कि अधिक कठोर मौसम होगा तो अधिक सूखे, भारी वर्षा और तूफान के साथ उत्पन्न होने वाली खराब मौसम की स्थिति से कृषि उत्पादन प्रभावित होगा। वायुमंडलीय कार्बन–डाइ–ऑक्साइड के बढ़ते स्तर के कारण भारत की आबोहवा गर्म हो जाएगी।

भारत में वर्तमान में औसत भोजन की उपलब्धता 550 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन है, जबकि चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका में क्रमशः 980 और 2850 ग्राम है। देश को अपने खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के लिए बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। अपनी बढ़ती आबादी को खिलाने के लिए जो वर्ष 2020 तक 1.30 बिलियन तक पहुंचने की संभावना है, वर्ष 2020 तक 300 मिलियन टन के खाद्यान्न उत्पादन करना होगा। इस बढ़ी हुई आबादी से भोजन की मांग को पूरा करने के लिए, देश के किसानों को अधिक अनाज का उत्पादन करने की आवश्यकता है। वर्ष 1950–51 में देश में कुल सकल सिंचित क्षेत्र 22.6 मिलियन हैक्टेयर था जो कि 2011–2012 में 99.1 मिलियन हैक्टेयर हो गया। यद्यपि कृषि देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 14 प्रतिशत का योगदान करती है, जबकि 64 प्रतिशत जनसंख्या उनकी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करती है। ऊपर से वर्षों से, शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि व औद्योगिकीकरण के कारण पानी की मांग तेजी से बढ़ गई है। इसके अलावा, भारत में फसल और भूमि उपयोग पैटर्न में बदलाव, भूजल के अधिक दोहन और सिंचाई व जल निकासी में बदलाव ने कई क्षेत्रों में हाइड्रोलॉजिकल चक्र को प्रभावित किया है। पानी की उपलब्धता कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है इसके अलावा पानी की गुणवत्ता और मात्रा भी हैं। इसके साथ ही ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए नीतियों व प्रौद्योगिकियों को लागू करने की भी आवश्यकता है। भारत विश्व जनसंख्या का 16 प्रतिशत हिस्सा है, लेकिन केवल 4 प्रतिशत विश्व जल संसाधन। कृषि विकास सीधे जलवायु पर निर्भर है, चूंकि तापमान, धूप और पानी फसल के मुख्य चालक हैं। जलवायु परिवर्तन ने हमारे वर्तमान फसल प्रोफाइल को काफी नुकसान पहुंचाया है और भविष्य में भी गंभीर परिणाम हो सकते हैं। तापमान में हर 1 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि के साथ गेहूं की पैदावार में 5–10 प्रतिशत तक गिरावट की भविष्यवाणी की जाती है और 21 वीं सदी के मध्य तक दक्षिण एशिया में कुल मिलाकर फसल की पैदावार 30 प्रतिशत तक घट सकती है।

## कृषि क्षेत्र से ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन

**कृषि के तहत मृदा से ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जनः** 1990 और 2012 के बीच, कृषि मृदा से नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन में 30.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो कुल कृषि उत्सर्जन का 39.3 प्रतिशत हो गया (एफ.ए.ओ. 2015)। नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन में यह मानव जनित वृद्धि मुख्यतः उर्वरक और

खाद के उपयोग के परिणामस्वरूप होती है।

**चावल की खेती से मीथेन उत्सर्जनः** एफ.ए.ओ. (2015) के अनुसार चावल उत्पादन से मीथेन उत्सर्जन 1990 से 2012 तक 12 प्रतिशत बढ़ गया, जो कि 2012 में कृषि से होने वाले कुल उत्सर्जन का लगभग 9.7 प्रतिशत हो गया।

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय क्षेत्र है जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं व इससे कृषि क्षेत्र को सबसे ज्यादा खतरा है। भारत ने 2050 तक ग्रीनहाउस गैंस उत्सर्जन को कम करने का लक्ष्य रखा है। जिसको मजबूत करने के लिए समन्वित प्रयासों की तत्काल आवश्यकता है व कृषि, वनों, पशुपालन, जलीय जीवन और अन्य जीवित प्राणियों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का आंकलन करने के लिए अनुसंधान करने की भी आवश्यकता है।

कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जोखिम प्रबंधन के लिए अच्छी तकनीक अपनाएं।

हालांकि कृषि समुदाय पहले से ही जलवायु जोखिमों के प्रबंधन के लिए कई रणनीतियों का उपयोग कर रहे हैं। इन रणनीतियों में बदलती फसलें शामिल हैं, जैसे कि अनाज की फसलों के बजाय सब्जियां उगाना फसल विविधीकरण उद्यम तथा वर्षा जल संचयन के उपाय। मौजूदा रणनीति जलवायु परिवर्तन के जोखिमों का प्रबंधन करने के लिए और जलवायु अनिश्चितता से बुरी तरह प्रभावित लोगों की विशाल संख्या की सेवा के लिए व बचाने में स्पष्ट रूप से अपर्याप्त है। जलवायु जोखिमों के परिणामस्वरूप होने वाले नुकसान और क्षति के लिए अपर्याप्त सार्वजनिक जागरूकता या अपर्याप्त तैयारी, सक्रिय जोखिम प्रबंधन प्रथाओं के अभाव व तकनीकी विशेषज्ञता के निम्न स्तर को जिम्मेदार ठहराया जाता है। कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जोखिम प्रबंधन के लिए निम्नलिखित तकनीक अपनाएं।

1. समुदाय आधारित बीज भंडारण एवं रखरखाव की सुविधा उपलब्ध करवाने हेतू कृषि सेवा प्रणाली।
2. सूखा सहिष्णु एवं उच्च तापमान सहिष्णु फसल किस्मों को अपनाना।
3. फसलों में उच्च एवं निम्न तापमान तनाव का प्रबंधन।
4. फसल उत्पादन में जोखिम को कम करने के लिए फसल विविधीकरण एवं एकीकृत दृष्टिकोण।
5. कृषि में संसाधन संरक्षण अनुकूलन और लचीलापन को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है।
6. संसाधन संरक्षण तकनीकियों में मुख्य रूप से वर्षा जल संचयन और मिट्टी की नमी संरक्षण शामिल हैं इससे अलावा अपमानित भूमि का सुधार, नदी की कटाई और जलप्रलय से मिट्टी की कटाई सुरक्षा, ढलान स्थिरीकरण और प्रबंधन।
7. जैव विविधता और पारंपरिक फसलों का संरक्षण एवं संरक्षण का प्रचार।
8. चावल–गेहूं की फसल की प्रणाली में कृषि संरक्षण को बढ़ावा देना।
9. जलवायु के अनुसार बेहतर फसलें और फसल प्रणाली अपनाना।
10. बहु–मंजिला (फसलों की विभिन्न ऊंचाई) फसल और वानिकी प्रणाली।
11. सामुदायिक समूहों के माध्यम से वन उपयोगकर्ताओं द्वारा वन संसाधनों का स्थायी एवं न्यायसंगत उपयोग।
12. परिवारों के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत।

## पशुधन खाद्य सुरक्षा के लिए अति महत्वपूर्ण

विश्व स्तर पर सेवन होने वाले प्रोटीन का 34 प्रतिशत भाग मांस, दूध और अंडे प्रदान करते हैं और साथ ही आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे विटामिन बी 12, विटामिन ए, लोहा, जस्ता, कैल्शियम और राइबोफ्लेविन भी प्रदान करते हैं लेकिन खाद्य सुरक्षा और पोषण में उनका योगदान अच्छा है और उसके अलावा अन्य वस्तुओं और सेवाओं की भी एक श्रृंखला शामिल है, जैसे गोबर की खाद और संकर्षण। बदलते जलवायु परिवेश में लाखों असुरक्षित लोग पशुधन पर निर्भर हैं, क्योंकि जानवरों की सीमांत स्थितियों और जलवायु के बदलाव का सामना करने के लिए पशुओं की अनुकूल करने की क्षमता अति महत्वपूर्ण है। अधिकांश पशुधन उत्पाद अन्य खाद्य स्त्रोतों की तुलना में अधिक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार है। उत्सर्जन फीड उत्पादन, एंटरिक किण्वन, पशु अपशिष्ट और लैंडयूज परिवर्तन के कारण होता है।

एफ.ए.ओ. (2017) के अनुसार पशुधन उत्पादन से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए निम्नलिखित तीन तरीकों का प्रस्ताव करता है:

- उत्पादकता में सुधार जो उत्सर्जन की तीव्रता को कम करता है।
- सुधारित चरागाह प्रबंधन के माध्यम से कार्बन अनुक्रम (कार्बन सीक्वेस्ट्रेशन)।
- वृत्ताकार जैवविविधता में बेहतर पशुधन एकीकरण।

**पशुधन क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जोखिम प्रबंधन के लिए अच्छी तकनीक अपनाएं:–**

विकासशील देशों में पशुधन कृषि क्षेत्र में एक प्रमुख भूमिका निभाता है, और पशुधन क्षेत्र कृषि सकल घरेलू उत्पाद में 40 प्रतिशत योगदान देता है। पशु मूल के खाद्य पदार्थों की वैश्विक मांग बढ़ रही है और यह स्पष्ट है कि पशुधन क्षेत्र का विस्तार करने की आवश्यकता होगी। प्रतिकूल मौसम के हानिकारक प्रभावों से पशुधन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जलवायु संबंधी चरम से चारे की मात्रा और गुणवत्ता में मौसमी उतार–चढ़ाव पशुधन के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। उत्पादन में नुकसान ज्यादातर जलवायु परिवर्तन के अप्रत्यक्ष प्रभाव से होते हैं जो मोटे तौर पर चारा और जल संसाधनों की अनुपलब्धता के माध्यम से होते हैं। जलवायु परिवर्तन से चारा उत्पादन की मात्रा और विश्वसनीयता, चारे की गुणवत्ता, पानी की मांग और चारा फसलों की खेती की क्षमता प्रभावित हो जाती है। विभिन्न जलवायु मॉडल अनुमान बताते हैं कि वर्ष 2100 तक, औसत वैश्विक तापमान 2010 की तुलना में 1.1 से 6.4 डिग्री सेंटीग्रेड तक गर्म हो सकता है। पशुधन के सामने आने वाली कठिनाई मौसम की चरम सीमा है, उदाहरण के लिए तीव्र गर्मी की लहरें, बाढ़ और सूखा। उत्पादन के नुकसान के अलावा, चरम घटनाओं से भी पशुधन की मृत्यु भी हो सकती है। पशुधन उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष प्रभाव गर्मी के तनाव से आता है। गर्मी का तनाव दूध उत्पादन, मांस उत्पादन, प्रजनन क्षमता और पशु स्वास्थ्य में कमी के माध्यम से पशुधन उत्पादकों के लिए एक महत्वपूर्ण वित्तीय बोझ के रूप में सामने आता है। पशुधन क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जोखिम को कम करने के लिए निम्नलिखित तकनीक अपनाएं।

1. पूर्व चेतावनी प्रणाली का विकास।
2. पशुओं की देशी नस्लों की आनुवंशिक क्षमता का उपयोग।
3. पशुधन क्षेत्र में अल्पकालिक जोखिम प्रबंधन तकनीकों में संक्रामक जानवरों की बीमारियों के खिलाफ टीकाकरण, आंतरिक परजीवी के खिलाफ डीवोर्मिंग और आपदाओं के दौरान पशु राहत शिविरों का उपयोग शामिल हैं।
4. नई घास एवं दलहनी प्रजातियों के चारे को पेश करके पशु प्रदर्शन में सुधार किया जा सकता है।
5. बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजातियों का रोपण, पशुधन क्षेत्रों में सहायता सेवाओं में सुधार।
6. चारा घास और दलहनी प्रजातियों (गर्मियों और सर्दियों के बारहमासी) की खेती, और पशुओं के लिए शेड की सुविधा में सुधार।
7. पशुधन क्षेत्र में अनुकूलन और शमन की सुविधा के अवसर एवं तालमेल।

# त्वचा सम्बन्धी रोग व उनका बचाव

**स्नेह लता चौहान, दिव्या अग्निहोत्री एवं तरुण कुमार**
वेटरनरी क्लिनिकल काम्प्लेक्स, लुवास
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

पशुओं के शरीर के अंदर तथा बाहर वातावरण में कई ऐसे पदार्थ होते हैं जिसके संपर्क में आने से त्वचा के रोग होते हैं। त्वचा सम्बन्धी रोग मुख्यतः रोग कुत्ते बिल्ली में पाए जाते हैं परन्तु ये रोग गाय, भैंस, भेड़, बकरी व अन्य पशुओं में भी होते हैं। त्वचा सम्बन्धी रोग ज्यादातर गर्मियों में पाये जाते हैं। गर्मियों व बारिश के मौसम में नमी बढ़ जाती है जिसके कारण भी बैक्टीरियल इन्फेक्शन होने की सम्भावना बढ़ जाती है। त्वचा सम्बन्धी रोगों में त्वचा के भिन्न प्रकार के रोग होते हैं जो कि उनके संक्रमण से पता चलता है कि यह त्वचा में किस प्रकार का रोग है। इसके अलावा कई तरह के त्वचा में बाहरी परजीवी होते हैं जिसके कारण भी त्वचा में एलर्जी हो जाती है।

**कारण:**

- परजीवी रोग जो कि पेट में कीड़े होने की वजह से पशु में मानसिक दबाव उत्पन्न होता है।
- जिससे बालों का झड़ना शुरू हो जाता है।
- बाहरी परजीवी जैसे कि चीचड़, मक्खियों व जुओं से होने वाले रोग।
- पर्यावरणीय जैसे कि कुछ पेड़–पौधों व फसलों से एलर्जी।
- मौसमः गर्मियों व बारिश के मौसम में वातावरण में नमी।
- घरों में प्रयोग होने वाले कीटाणुनाशक जैसे कि फिनाइल, लाइजोल इत्यादि।

**लक्षण**

रोगों के कारणों के आधार पर लक्षण भी अलग अलग तरह के होते है जैसे किः

- खुजली, बाल झड़ना, त्वचा की ऊपरी परत का उतरना।
- पशुओं में चमड़ी पर जगह–जगह लाल धब्बे होना।
- त्वचा पर फफोले होने जिनमें से तरल पदार्थ निकलता है।
- त्वचा पर हल्के हल्के छोटे दाने बनना।
- छोटी छोटी गांठे बनना।
- त्वचा पर दाद बनना।
- त्वचा सूजन से मोती हो जाना।
- अधिक समय होने पर त्वचा सुख कर मोटी सख्त व पपड़ी बन जाती है।
- कुछ प्रकार की खुजली व् त्वचा सम्बन्धी रोग प्राणीरूजक होती है जो कि पशुओं से मनुष्यों को भी हो सकती है।

**बचाव:**

- एलर्जी के कारणों को दूर करे।
- पशुओं के रहने के स्थान को नियमित रूप से साफ रखें क्योंकि बैक्टीरिया, फफूंदी आदि लम्बे समय तक उस स्थान पर पड़े रहते है जिससे की रोग तीव्रता से बढ़ता है इसलिए साफ सफाई रखें।
- पशुओं को समय समय पर स्वच्छ पानी से नहलाना चाहिए।
- कुत्तों को मनुष्यों के शैम्पू से नहीं नहलाना चाहिए उन्हें उनके शैम्पू से नहलाना चाहिए।
- पशुओं के बालों में कंघी करनी चाहिए जिससे उनकी त्वचा सही रहती है व संक्रमण होने का खतरा कम हो जाता है।
- पशुओं का बाहरी परजीवी से बचाव करना चाहिए।
- पशुओं के शरीर पर चीचड़, जुएं व अन्य बाहरी परजीवी होने से पशु चिड़चड़े हो जाते हैं और उनका दूध भी कम हो जाता है इसलिए कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग करना चाहिए परन्तु यह दवाइयां बहुत जहरीली होती है इसलिए इनका प्रयोग पशुचिकित्सक से पूछ करना चाहिए व उनका प्रयोग करते हुए सावधानी बरतनी चाहिए। बच्चों से इन दवाइयों को दूर रखना चाहिए।
- किसी भी त्वचा सम्बन्धी रोग से बचाव की जानकारी के लिए अपने निजी पशुचिकित्सक से संपर्क करें।


**930-000-0857**

whatsapp

**लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर**

# ऊँट वंश में त्वचीय (चर्म) रोग-रोकथाम एवं उपचार

**विक्रम सिंह देवल[1], वसुन्धरा डावड़ा[2] एवं अतुल शंकर अरोड़ा[3]**
[1]पीएच.डी स्कॉलर, वेटरनरी मेडिसीन, राजुवास (बीकानेर),
[2]वरिष्ठ पशुचिकित्सा अधिकारी, पशुपालन विभाग (कोटा),
[3]सहायक आचार्य, प्रसार शिक्षा निदेशालय, राजुवास (बीकानेर)
राजस्थान पशुचिकित्सा और पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

मरू प्रदेश की पशु सम्पदा में रेगिस्तान का जहाज कहे जाने वाले ऊँट की विशेष उपयोगिता है। मरूस्थलीय प्रदेश की कठिन परिस्थितियों में भी यह अपनी अनूठी जैव–भौतिकीय विशेषताओं के कारण स्वयं को अनुकूल रख पाता है तथा इस प्रदेश के मनुष्यों का संगी बन उन्हें दुग्ध, परिवहन, भार वाहन, बाल, ऊँट चर्म आदि अनेक तरीकों से लाभ पहुँचाता है। सम्पूर्ण भारत की कुल ऊँट आबादी का लगभग 80 प्रतिशत राजस्थान में मौजूद है किन्तु ऊँट आबादी दिन–प्रतिदिन कम हो रही है जिसके फलस्वरूप राजस्थान सरकार ने वर्ष 2014 में ऊँट को राज्य पशु घोषित कर दिया है।

ऊँट सम्पदा को कम करने वाले कारकों में एक कारण इसमें होने वाले रोग भी है। यद्यपि इनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती है, किन्तु अनेक रोग इनकी कार्यक्षमता को कम कर देते हैं और कुछ में मृत्यु तक हो जाती है। ऐसे ही ऊँटों में त्वचीय (चर्म) रोग है जो इनकी कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं अन्य पशुओं की तरह ऊँट भी अनेक त्वचीय (चर्म) रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। ऊँटों के प्रमुख चर्म रोग निम्न है–

**ij thoh tfur Roph; ¼pe½ jkx@e¡t**

- मेंज या खाज–खुजली ऊँटों में होने वाला सबसे सामान्य परजीवी जनित रोग है। ऊँटों में मुख्यतः सारकोप्टिकोसिस रोग होता है जो कि सारकोप्टिक स्काविएई नामक माइट के कारण होता है।
- यह बेहद संक्रामक और ऊँटों को दुर्बल करने वाला रोग है।
- यह सामान्यतः तनावग्रस्त, दुर्बल, व्यस्क और अन्य रोगों से पीड़ित ऊँट में अधिक होता है।
- आवारा संक्रमित ऊँट जब झुंड के साथ मिलता है तो





वह एक स्वस्थ झुंड में खाज/खुजली के संक्रमण को फैलाने का कार्य करता है।
- यह रोग ठण्डे मौसम में अधिक होता है और गर्मियों में यह रोग धीरे–धीरे फैलता है।
- इस रोग की शुरूआत गर्दन, वक्ष, कंधे तथा जांघ के भीतरी क्षेत्र से होकर शरीर के अन्य भागों में भी फैल जाता है। माइट्स की गतिविधियां, संक्रमित ऊँट में खुजली पैदा करती है जिसके फलस्वरूप ऊँट चरना बंद कर देता है तथा शरीर को पेड़, दीवार या दूसरे ऊँट से रगड़ता है। यह रोग ऊँट में लम्बे समय तक रहता है जिसके कारण त्वचा का केरेटीनाईज्ड होना, संयोजी उत्तकों को प्रसार, त्वचा का मोटा होना तथा झुर्रीदार सलवटों में परिवर्तन होना प्रमुख है।

- ऊँटों में माइट्स के इलाज में चमड़े के नीचे आईवरमेक्टिन का इंजेक्शन इसका प्रमुख चिकित्सीय प्रबंधन है। साथ ही मल्टीविटामिन और खनिज लवण की लगातार खुराक से इस रोग को सफलतापूर्वक हल किया जा सकता है। इस रोग से नियंत्रण के लिए रोग ग्रस्त ऊँट को अन्य ऊँटों से तुरन्त अलग कर देना चाहिए तथा संक्रमित परिसर और संक्रमित ऊँट के उपयोग में आने वाले सामानों को भी कीटनाशक औषधि के छिड़काव से विसंक्रमित किया जाना चाहिए। सरसों का तेल तथा लहसून का लेप भी उपयोगी होता है।

**QQun tfur Roph; ¼pe½ jksx¼&** यह रोग मुख्यतः छोटे व वृद्ध ऊँटों में ज्यादा होता है। फफूंद रोग अनेक कारकों की वजह से होते हैं जैसे रिंगवर्म या दाद–टाईकोफाइटान, माइक्रोस्पोरम एवं केनेडियोसिया–कनडिडिया नामक फफूंद से होता है। यह फफूंद जनित रोग ऊँटों से मनुष्यों में भी हो सकता है।

- यह रोग वर्षा तथा उसके बाद में ज्यादा फैलते हैं।
- इस रोग के प्रमुख लक्षणों पर गोलाकार भूरे से सफेद चकते हो जाते हैं जिसकी वजह से उस स्थान पर बाल उड़ जाते हैं तथा त्वचा सख्त हो जाती है। इस तरह के लक्षण सिर, गर्दन, कंधों से शुरू होकर सम्पूर्ण शरीर में फैल जाते हैं।
- त्वचीय (चर्म) फफूंद रोगों के उपचार के लिए बहुत से घरेलु नुस्खों को काम में लिया जाता है जैसे– गंधक और सरसों के तेल का लेप, ऊँटनी के दूध की झाग, बाजरे का आटा और नमक इत्यादि। अगर रोग अधिक बढ़ जाता है तब एन्टीफंगल दवाइयों से ऊँट का उपचार किया जाता है।

**thok.k tfur Roph; ¼pe½ jksx¼&**

परजीवी तथा फफूंद के समान ही जीवाणु भी ऊँटों मे त्वचीय (चर्म) रोग उत्पन्न करते हैं। इनमें से प्रमुख हैं संक्रामक त्वचा परिगलन जो कि स्टेफाइलोकोकस जीवाणु के कारण होता है। इसे सामान्य भाषा में फोड़ा भी कहते हैं।

- यह रोग हर आयु वर्ग के ऊँटों में होता है परन्तु छोटे ऊँटों में यह रोग अधिक होता है।
- इसके साथ ही गन्दगी पूर्ण वातावरण मे रहने के कारण भी ऊँटों में त्वचीय (चर्म) रोग हो जाते हैं।
- इनके उपचार हेतु उस स्थान पर एंटीबायोटिक का उपयोग करना चाहिए।
- संक्रमित ऊंट को स्वस्थ ऊँट से अलग रखना चाहिए तथा ऊँटशाला में सम्पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।

उपरोक्त लिखित परजीवी, फफूंद व जीवाणुजनित त्वचीय (चर्म) रोगों की समय रहते देखभाल, उचित प्रबंधन व चिकित्सा की जानी आवश्यक है जिससे ऊँट वंश इन रोगों से कम से कम संक्रमित हो पाएं।

# गर्मियों और बरसात में पशु–प्रबंधन

**सुजॉय खन्ना[1], हरप्रीत सिंह[1] एवं देवेंद्र सिंह[2]**

[1]हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, करनाल एवं [2]हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

## xfe;k e ic/ku

भारत जैसी जलवायु वाले देश के लिए जानवरों को खुले में रखने की प्रणाली सबसे उपयुक्त और किफायती है, लेकिन बेहद गर्म इलाकों में तापमान को कम रखने के लिए कुछ ढांचागत बदलाव किये जाने चाहिए। जानवरों का सीधी धूप से बचाव किया जाना चाहिए जिसके लिए छायादार जगहों की अधिक से अधिक व्यवस्था की जानी चाहिए। छाया के लिए पेड़ बड़े अच्छे रहते हैं। वे न सिर्फ सौर विकिरणों को कारगर तरीके से रोकते हैं, बल्कि उनकी पत्तियों की सतह से होने वाले वाष्प के उत्सर्जन से आसपास की हवा का तापमान कम हो जाता है और हवा के संचार में कोई बाधा नहीं आती। इसलिए पशुओं के बाड़ों के अंदर और इसके इर्द–गिर्द पेड़ लगाये जाने चाहिए। अगर गायों को फार्म के भीतर घूमने–फिरने की छूट दे दी जाए तो गायें कृत्रिम छायादार स्थान की बजाय नीम, पीपल, बरगद और शीशम जैसे बड़े पेड़ों की छाया में जाना अधिक पसंद करती है। लेकिन पेड़ों को पशु आवास की दीवारों से 10 से 15 फुट की दूरी पर लगाया जाना चाहिए ताकि बाड़ों और दीवारों पर इनका बुरा असर न पड़े। बहुत गर्म स्थानों में पशुओं के बाड़ों की छत के नीचे प्रेशर स्प्रिंकलर और फॉगर जैसे उपकरण लगाये जाने चाहिए।

बाड़ों के अंदर का तापमान कम रखने के लिए पटसन की बोरियों से बने पर्दे लटकाए जाने चाहिए और उन पर समय–समय पर पानी का छिड़काव करना चाहिए। ज्यादा तापमान होने पर जानवर चारा खाना कम कर देते हैं। इसलिए जानवरों में गर्मी से होने वाली बेचैनी और तनाव को दूर करने के लिए उन्हें पर्याप्त मात्रा में हरा चारा उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इसके अलावा पशुओं को दिन में उस वक्त चारा देना चाहिए जब तापमान कम हो। गायों को दिन भर साफ और ठंडा पानी पीने के लिए उपलब्ध कराया जाना चाहिए। सबसे अधिक गर्मी वाले वक्त यानी दोपहर 11 बजे से शाम 4 बजे तक पशुओं को उनके बाड़ों में ही रखा जाना चाहिए ताकि उनमें गर्मी की वजह से तनाव पैदा न हो।

अगर पशु को लू लग गयी हो तो उसे किसी ठंडी जगह पर पहुंचा देना चाहिए और उसके माथे पर बर्फ के पानी से भीगा कपड़ा रखना चाहिए। लू लगने पर पशु को ठंडा पानी पीने के लिए उपलब्ध कराया जाना चाहिए और तत्काल पशु चिकित्सक को मदद के लिए बुला लेना चाहिए। गर्मियों के मौसम में पशु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते–ले जाते समय गर्मी से होने वाले तनाव के असर को कम से कम करने के लिए पीने का पानी उपलब्ध कराया जाना चाहिए। जानवर को एक से समय एक जगह से दूसरी ले जाया जाना चाहिए जब गर्मी अपेक्षाकृत कम हो। अगर रास्ते में वाहन को कहीं रोकना पड़े तो उसे छायादार स्थान पर खड़ा करना चाहिए। एक ही जगह खड़े रहने से वाहन के अंदर तापमान न बढ़े इसके लिए रुकने की अवधि कम से कम होनी चाहिए। सामान्य नियम के तौर पर गायों को वाहन में रखकर दिनभर में 8 घंटे से ज्यादा यात्रा नहीं करनी चाहिए। आठ घंटे की यात्रा के बाद उसे वाहन से नीचे उतारा जाना चाहिए और चारा–पानी खिलाकर आराम करने देना चाहिए।

## cjlkr e ic/ku

बरसात का मौसम भले ही छोटा होता हो मगर इस दौरान जानवरों के स्वास्थ्य और सेहत पर बुरा असर पड़ने की आशंका रहती है। इसलिए गौशाला के प्रबंधकों को बरसात में पशुओं के लिए कुछ अतिरिक्त इंतजाम करने चाहिए। बरसात में सूखे चारे के खराब होने की आशंका बढ़ जाती है जिससे बचने के लिए उसे सूखी हालत में बंद करके और ढक कर गोदाम में रखने का इंतजाम किया जाना चाहिए। बरसात में प्रदूषित पानी पीने और बाड़े के गीले फर्श से जानवरों में बाहरी और अंदरूनी परजीवियों के

संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। इसलिए इस दौरान साफ पानी की आपूर्ति के साथ–साथ जानवरों का परजीवियों से बचाव के लिए भी कदम उठाये जाने चाहिए।

फर्श पर फिसलन की वजह से पशुओं के फिसलने और गिरने का खतरा भी बरसात के मौसम में होता है। इसलिए यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बारिश के समय जानवर अपने बाड़े के अंदर रहें। दीर्घकालीन नियोजन के तहत बरसाती पानी की निकासी को भी सुचारू बनाए रखना चाहिए ताकि गौशाला में पानी एक जगह जमा न हो और बहकर नाले में पहुँच जाए। इस के साथ–साथ बरसात के मौसम से पहले पशुओं को पशु–चिकित्सक के परामर्श से पेट के कीड़ों की दवाई और पशुओं का टीकाकरण अवश्य कराया जाना चाहिए।


# विस्तार शिक्षा निदेशालय

**लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार**

## प्रमुख गतिविधियाँ

1. **पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम**
2. **पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)**
3. **नि:शुल्क SMS सेवा**
4. **पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री**
   **(पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)**

# संकरण द्वारा भारतीय गाय का सुधार

**सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह**
विस्तार शिक्षा निदेशालय एवं पशु प्रजनन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

प्राचीनकाल से ही मनुष्य के दैनिक जीवन में गाय का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। गाय न केवल माता की तरह जन साधारण का पालन करती है वरन् खेती में किसान की सहायता के लिये बैल भी उपलब्ध कराती है। इसलिए भारतीय संस्कृति में गाय ''माता'' का दर्जा रखती है व वह हर तरह से पूजनीय मानी जाती है।

परन्तु मनुष्य बड़ा स्वार्थी रहा है गाय की देखभाल उसी समय तक करता है जब तक वह दूध उत्पादन में रहती है, शुष्क होने पर इसकी अवहेलना कर देता है। इसी कारण इसकी दूध उत्पादन की क्षमता घट रही है।

इस विषम परिस्थिति को देखते हुए दूध उत्पादन की क्षमता को बढ़ाने की दिशा में कुछ छुट–पुट प्रयत्न अवश्य किए गए परन्तु बात विचार विनिमय से आगे न बढ़ी। अन्ततः 1966 में यह निर्णय लिया गया कि संकरण द्वारा भारतीय गायों की नस्ल का सुधार किया जाए। इस दिशा में कई अनुसंधान व विकास योजनाएं प्रारम्भ की गई जिससे यह सिद्ध हुआ कि संकर गायों में देसी गायों की अपेक्षा 2–3 गुणा दूध बढ़ जाता है और ब्यांत काल भी कम हो जाता है।

## vkn'kZ ladj xk;

एक उन्नत गाय में जो आहार एवं कृषि जन्य दूसरे पदार्थों को दूध में परिवर्तित करने में सक्षम हो, नीचे लिखे गुण आवश्यक हैं:

1. संकर नवजात बच्चा, जन्म पर कम से कम 25 किलो भार का होना चाहिए और साधारण पोषक आहार मिलने पर 18 मास की आयु पर इसे करीब 250 किलो भार प्राप्त कर लेना चाहिए।
2. अठारह मास की आयु पर संकर बछड़ी व्यस्क हो जानी चाहिए तथा औसतन 2 गर्भाधानों से गर्भवती हो जानी चाहिए।
3. गर्भावस्था के समय गाय को औसतन 600–700 ग्राम प्रतिदिन भार ग्रहन करना चाहिए जिससे कि प्रथम प्रसूति के समय इसका भार 420–450 किलो तक हो।
4. एक संकर गाय को प्रथम ब्यांत में औसतन 2400 किलो दूध देना चाहिए तथा प्रौढ़ होने पर 3000 किलो दूध देना चाहिए।
5. साधारणतया गायों में दूध तीसरे या चौथे ब्यांत तक बढ़ता है। फिर क्रमशः घटना शुरू हो जाता है। विभिन्न सूचनाओं से यह ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार पषु पांच ब्यांतों तक आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद रहता है।
6. संकर गाय जोकि दूध की बढ़ती मांग को पूरा कर सके, 13–14 मास के अंतराल से ब्याती रहनी चाहिए।
7. इस प्रकार की गाय, स्थानीय जलवायु तथा किसानों की आर्थिक स्थिति के अनुसार पनपनी चाहिए, जिससे कि निर्धन ग्रामीणों के ऊपर बोझ न बन सके।
8. इन गायों से उत्पन्न बछड़ों में इतनी आंतरिक एवं शारीरिक शक्ति होनी चाहिए कि कृषकों को खेती के लिये आवश्यक शक्ति प्रदान कर सके।

संकर गाय देसी गायों को होल्स्टीन–फ्रीजियन, ब्राउन स्विस तथा जरसी नस्ल के सांडों से गर्भवती कराकर पैदा की जाती है। संकर गायों में जन्म के समय का भार 19.7 से 30.7 कि.ग्रा. तक होता है। उन बच्चों का जन्म भार अपेक्षाकृत अधिक होता है जो भारी नस्ल के विदेशी सांडों से उत्पन्न होते हैं। अठारह मास की आयु पर यह निश्चित कर लेना चाहिए कि प्रत्येक संकर बछड़ी 250 किलो से अधिक भार की होनी चाहिए। इस आयु पर और अधिक भार होने से अधिक लाभ रहेगा। पशुओं में व्यस्क होने की आयु कम होनी चाहिए। साधारणतया हर संकर नस्ल में यह आयु 18 से 20 माह तक पाई जाती है। प्रथम ब्यांत के समय की आयु 755 से 1069 दिनों तक होती है। जरसी संकर गायों

में यह आयु निःसन्देह काफी कम होती है। यद्यपि होल्स्टीन संकर गायों में भी अन्तर अधिक नहीं है तथापि दुग्ध उत्पादन क्षमता में होलस्टीन–फ्रीजियन नस्ल से उत्पन्न संकर गाय सबसे अधिक दूध देती है। रेड डेन, ब्राउन स्विस तथा जरसी नस्ल से उत्पन्न संकर गायें उत्पादन क्षमता में फ्रीजियन के बाद आती है। अध्ययन से यह भी पता चला है कि देसी नस्लों में हरियाना गाय को फ्रीजियन से संकरण कराने पर, संकर अधिक लाभप्रद होते हैं। क्योंकि हरियाना नस्ल गाय की उत्पादन क्षमता वैसे ही कम होती है, इन संकर गायों में ब्यांत काल 338 से 440 दिन तक पाया जाता है। आमतौर से यह ब्यांत काल संकर गायों में 13 से 14 मास के लगभग होता है।

**fu"d"kZ** उपरोक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संकर गायों में उपयुक्त स्तर तक विदेशी पैतृक गुणों का समावेश करके (50 से 62.5 प्रतिशत तक) उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ाई जा सकती है। उपरोक्त विवेचना में यह प्रस्तुत किया गया था कि एक अनुमानित संकर गाय जोकि व्यापारिक दृष्टि से लाभप्रद हो, के कुछ आदर्श होने चाहिए। प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विभिन्न संकर गायों का जन्म भार 25 किलो के लगभग होता है तथा 18 मास की आयु पर भार 250 किलो होता है। विभिन्न संकर वर्गों में होल्स्टीन–फ्रीजियन की संकर गायों में दुग्ध उत्पादन 2400 किलो होता है, हालांकि जरसी की संकर गायों में यह उत्पादन कम होता है। सभी संकर गायें 13–14 मास के अंतराल से बच्चा देती हैं।


**930-000-0857**

whatsapp

**लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर**

# कृत्रिम गर्भाधानः लाभ, शंका एवं समाधान

**वसुन्धरा डावड़ा[1], विक्रम सिंह देवल[2] एवं अतुल शंकर अरोड़ा[3]**

[1]वरिष्ठ पशुचिकित्सा अधिकारी, पशुपालन विभाग, [2]पीएच.डी स्कॉलर, वेटरनरी मेडिसीन,
[3]सहायक आचार्य, प्रसार शिक्षा निदेशालय, पशुपालन विभाग, राजुवास, बीकानेर (राजस्थान)

पशु हमारे देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। पशु से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना, उनकी नस्ल पर निर्भर करता है। इसलिए पशुधन विकास हेतु नस्ल सुधार कार्यक्रम को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। कृत्रिम विधि से नर पशु से वीर्य एकत्रित करके मादा पशु के प्रजनन अंगों में रखने की प्रक्रिया को कृत्रिम गर्भाधान कहते हैं। हमारे देश में कृत्रिम गर्भाधान को गाय तथा भैंसों में बड़े पैमाने पर अपनाया जा चुका है। पशुपालक कृत्रिम गर्भाधान को मादा पशुओं में अपनायें तो पशुओं की नस्ल सुधार के साथ–साथ दूध का उत्पादन भी बढ़ेगा।

## Ñf=e xHkk/kku d: ykHk &

1. कृत्रिम गर्भाधान से कम दूध देने वाली नस्लों में सुधार कर सकते हैं। इसके लिए हम किसी भी उन्नत नस्ल के सांड के वीर्य से गाय को यदि ग्याभिन कराएं तो उससे पैदा होने वाली बछिया निःसंदेह ही अपनी मां से ज्यादा दूध देगी।
2. कृत्रिम गर्भाधान से यह भी फायदा है कि हम एक सांड से एक बार इकट्ठा किए गए वीर्य से अनेक गायों को ग्याभिन कर सकते हैं। इसलिए हर पशुपालक को उन्नत नस्ल का सांड रखने की जरूरत नहीं होती और न ही प्रत्येक पशुपालक इस तरह का महंगा तथा खर्चीला सांड रख सकता है।
3. कृत्रिम गर्भाधान के लिए इस्तेमाल होने वाले वीर्य में एंटीबायोटिक दवा मिली रहती है जिसकी वजह से पशुओं के जननांगों में बीमारी फैलने की संभावना नगण्य रहती है।
4. जिस तरह से कृषि के क्षेत्र में हरित क्रांति आयी है उसी तरह से हम श्वेत क्रांति की तरफ बढ़कर अधिक दूध उत्पादन करके, देश की खाद्य समस्या एवं कुपोषण को काफी हद तक दूर कर सकते हैं।
5. इस विधि द्वारा पशु वीर्य को हम अपनी जरूरत के मुताबिक कहीं भी, किसी भी समय ले जा सकते हैं अथवा जब जरूरत हो उसे प्रयोग कर सकते हैं। इसके अलावा हम अच्छे सांड के वीर्य को वर्षों तक सुरक्षित रख सकते हैं।
6. आधुनिक तकनीकों जैसे कि सिनक्रोनाइजेशन का उपयोग कर काफी संख्या में मादाओं को एक ही समय पर ताव में लाया जा सकता है एंव इन पशुओं को कृत्रिम गर्भाधान के द्वारा आसानी से ग्याभिन किया जा सकता है।
7. अपंग मादाओं में कृत्रिम गर्भाधान, ग्याभिन करने की उपयुक्त एवं सुविधाजनक तकनीक है।
8. प्रजनन संबंधी लेखा–जोखा लिखित में रखा जा सकता है।

## Ñf=e xHkk/kku&'kadk ,oa lek/kku

कृत्रिम गर्भाधान के विषय में लोगों को शंका रहती है कि पशु ग्याभिन नहीं रहते, यदि पशु सही समय पर कृत्रिम गर्भाधान के लिए लाया जाए और सांड का वीर्य अच्छा है तो मादा पशु के ग्याभिन रहने की संभावना ज्यादा रहती है।

मादा पशु के ग्याभिन न रहने के मुख्यतया निम्न कारण हो सकते हैं–

**1- lk'k dk lgh le; ij Ñf=e xHkk/kku u djkuk%** इसके लिए भारतीय नस्ल के गाय भैंसों में यदि पशु सुबह के समय ताव में आया है तो उसे शाम के समय और यदि शाम को ताव में आया है तो अगले दिन सुबह को ग्याभिन कराना चाहिए। संकर नस्ल की गायों में ताव में आने के 24–30 घण्टे बाद कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए। बहुत से पशुपालकों की शिकायत रहती है कि उनका पशु जब ताव में आता है तो वह कई लक्षण जैसे रंभाना, स्त्राव का आना आदि ठीक तरह से प्रकट नहीं करते, जिसकी वजह से पता नहीं चलता कि पशु कब ताव में आया है।

बहुत से पशु इस तरह के लक्षण प्रकट नहीं करते मगर रंभाने के अलावा बाकी सभी चिन्ह् जैसे मूत्र के रास्ते चिपचिपाहट वाला स्त्राव आना, बार–बार मूत्र करना, पशु का बेचैन रहना आदि प्रकट करते हैं। जिन्हें देखकर यह पता लगाया जा सकता है कि पशु ताव में है।

2- **tuukxksa esa laØe.k gksuk%** यदि मादा पशु के जननांगों में किसी भी प्रकार का संक्रमण है तो पशु के ग्याभिन रहने की संभावना कम रहती है। मादा पशु के गर्भाशय में संक्रमण सामान्यतया गाँवों में घूमने वाले लावारिस सांड से ग्याभिन कराने से हो जाता है। ये सांड पहले से ही रोगग्रस्त होते हैं तथा यह रोग अन्य गाय या भैंसों में फैला देते हैं। इसलिए गाय भैंस को ताव में आने पर उसे कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जाना चाहिए न कि सांड से ग्याभिन कराना चाहिए क्योंकि सांड से ग्याभिन कराने पर एक तो मादा पशु में रोग हो सकता है तथा दूसरे आने वाली संतति भी अच्छी नस्ल की नहीं होगी। फिर भी यदि मादा पशु के जननांगों में संक्रमण किसी कारण से हो जाता है और यदि संक्रमण कम है तो पशु को ग्याभिन न करवाकर कुशल पशुचिकित्सक के द्वारा उसके प्रजनन अंगों में एंटीबायोटिक दवाई डलवानी चाहिए और अगली बार जब ताव में आये तो ग्याभिन करवाना चाहिए और यदि संक्रमण ज्यादा है तो पशु को उस बार ग्याभिन नहीं करवाना चाहिए तथा तीन या चार बार तक एंटीबायोटिक दवाई पशु के प्रजनन अंगों में डलवानी चाहिए और फिर बाद में ताव में आने पर ग्याभिन करवाना चाहिए।

3. इसके अलावा कभी–कभी इस्तेमाल किए जाने वाला वीर्य भी अच्छी गुणवत्ता का नहीं होता, जिसके कारण भी पशु ग्याभिन नहीं रह पाते।

4. इसके साथ ही साथ पशु को ग्याभिन करने वाले पशुचिकित्सक को भी कृत्रिम गर्भाधान करते समय काफी सतर्क रहना चाहिए तथा उसे उसी स्थिति में पशु को ग्याभिन करना चाहिए जब पशु अच्छे से ताव में हो तथा वीर्य भी उच्च कोटि का हो।

पशुपालक इन सभी बातों का ध्यान रखें जैसे पशु के ताव में आने पर उसकी पहचान करना, ठीक समय पर पशु को ग्याभिन कराने के लिए ले जाना तथा यह देखना कि उनका पशु कोई असामान्य तरह का स्त्राव तो नहीं डाल रहा है और यदि ऐसा है तो उसका इलाज कराना आवश्यक है। इसके अलावा पशु को संतुलित आहार, नमक एंव खनिज लवण मिश्रण देना भी अति आवश्यक है जिससे उसके प्रजनन अंगों की वृद्धि ठीक तरह से हो सके। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिन पशुओं के प्रजनन अंगों की वृद्धि ठीक तरह से नहीं हो पाती वे पशु अधिकांशतः ग्याभिन नहीं रह पाते। इन सभी बातों पर ध्यान दिया जाए तो पशु अवश्य ही ग्याभिन होगा और उससे जो संतति प्राप्त होगी वह उन्नत नस्ल व अधिक दूध उत्पादन वाली होगी।

# सूअरों के रोग, सुरक्षा एवं नियंत्रण

**सागर कादयान[1], सुजॉय खन्ना[2] एवं देवेन्द्र सिंह[3]**

[1]पीएच.डी. स्कॉलर पशुधन उत्पादन और प्रबंधन विभाग, लुवास,
[2]पशु विज्ञान केन्द्र, करनाल एवं [3]हरियाणा पशु विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

विभिन्न प्रकार के कीटाणु, विषाणु व परजीवी पशुओं में अनेकों रोगों का कारण बनते हैं। संक्रामक होने के कारण, ये रोग तेजी से एक पशु से दूसरे में फैलते हैं। सूअरों के प्रमुख संक्रामक रोगों का विवरण नीचे दिया गया है।

## 1- Lokbu Qhoj ¼lvjk dk rkt cq[kkj½

यह सूअरों में विषाणुओं द्वारा होने वाला एक घातक रोग है। इस रोग से सभी उम्र के जानवर प्रभावित हो सकते हैं। कई देश इस रोग से प्रभावित हो चुके हैं। भारत, म्यांमार, नेपाल आदि कई देशों में इस रोग का प्रभाव अधिक हैं। स्वाइन फीवर छूत का रोग है और एक सूअर से दूसरे सूअर में संक्रमण बड़ी जल्दी फैलता है। इस रोग के विषाणु खाने व पानी के जरिए भी स्वस्थ सूअर में जा सकते हैं। विषाणु सूअरी के गर्भ में पल रहे बच्चों को भी ग्रसित कर सकते हैं और बच्चों (शावक) में मृत्यु दर भी काफी अधिक हो सकती है।

**y{k.k&** इस रोग से ग्रसित जानवर में विभिन्न लक्षण मिल सकते हैं जैसे कि तेज बुखार (1060–1070 फारनहाइट तक), पशु का सुस्त व निढ़ाल हो जाना, खाने व पानी पीने में अरूचि दिखाना, दस्त व इसके कारण शरीर में पानी की कमी (डिहाईड्रेशन), आँखों में गीड़ का होना और कई बार गीड़ की वजह से आँखें बन्द होना, बीमारी का दिमाग पर असर होने की वजह से पशु का डगमगा कर चलना, कंपकपी, अधरंग, चक्कर काटना आदि, चमड़ी पर लाल, नीले रंग के चकते हो जाना। शव–परीक्षण के दौरान भी शरीर में कुछ बदलाव ऐसे मिलते हैं जिससे बीमारी को पहचानने में बड़ी मदद मिलती है। जैसे कि बड़ी आँतड़ी के पिछले हिस्से में बटन जैसे छाले, शरीर के विभिन्न अंगों के ऊपर खून के चकते, गुर्दों में खून के चकते, लिम्फ ग्रन्थियों में सूजन इत्यादि।

**cPkko o jkdFkke&** बीमार पशु को हमेशा स्वस्थ पशु से दूर रखें। बीमार जानवर का खानपान भी स्वस्थ पशु से अलग हो। अगर हो सके तो जो व्यक्ति बीमार पशु की देखभाल करता हो, वह स्वस्थ पशु की देखभाल न करें। बीमारी आने के बाद स्वस्थ या बीमार सूअरों को दूसरे किसान को न बेचें। वो बाड़े जहाँ पर सूअरों को रखा हुआ है उनकी साफ–सफाई का अच्छी तरह से ध्यान दें। मृत पशु को खुले में न फैंकें। इन्हें गहरे गड्ढे में दबाएँ। इस बीमारी से बचने के लिए नियमित तौर पर सूअरों का टीकाकरण (वैक्सीनेशन) करें। नियमित तौर पर आप अपने सूअरों में टीकाकरण कराएँ ताकि बीमारी को आने से रोक सकें।

## 2- ekrk jkx

यह भी सूअरों में होने वाला एक संक्रामक रोग है। इस रोग से सभी उम्र के सूअर ग्रसित हो सकते हैं, परन्तु मृत्यु दर छोटी उम्र के जानवरों में ज्यादा होती है। स्वस्थ पशु के बीमार पशु के सीधे सम्पर्क में आने से रोग ज्यादा फैलता है। इस रोग से सूअरों में मृत्यु दर स्वाइन फीवर की अपेक्षा कम होती है।

**y{k.k&** इस रोग से ग्रसित सूअरों में तेज बुखार, सूअरों का सुस्त व निढ़ाल हो जाना, शरीर के ऊपर सबसे पहले छाले बनना जो बाद में फूट जाते हैं। इनके ऊपर खरूंड (भूरे रंग का) बनता है, धीरे–धीरे जख्म भर जाता है और खरूंड गिर जाते हैं। अगर बीमारी का प्रभाव बहुत ज्यादा हो तो मुँह, साँस वाली नली, भोजन नली में भी छाले देखे जा सकते हैं।

**cpko o jkdFkke&** बीमारी आने के बाद ठीक हुए सूअरों में चेचक रोधक क्षमता काफी बढ़ जाती है। कोशिश करें कि बीमार पशु को स्वस्थ पशु से अलग रखा जाए। बीमार पशु का खानपान भी अलग से हो। यह बीमारी थोड़ा लम्बा चलती है इसलिए यह जरूरी है कि साफ–सफाई पर ज्यादा ध्यान दें। पशु चिकित्सक की देख–रेख में बीमार सूअरों को दवाई दिलाएं ताकि प्रभावित सूअर दूसरी बीमारी से ग्रसित न हो सकें और मृत्यु दर को कम किया जा सके।

## 3- lkyekusyksfll

यह सूअरों में कीटाणुओं द्वारा होने वाला रोग है। यह

रोग बीमार जानवर से स्वस्थ जानवर में सीधे सम्पर्क में आने से या इस कीटाणु द्वारा दूषित भोजन या पानी से फैलता है। छोटी उम्र के सूअरों (3 महीने की उम्र तक) में यह रोग ज्यादा होता है। इस रोग के कीटाणु सूअर की आँतड़ी में जाकर अपना असर दिखाते हैं और आँतड़ियों को क्षति पहुँचाते हैं।

**y{k.k&** इस रोग से ग्रसित जानवरों में छोटे बच्चों में दस्त लक्षण हो सकते हैं। शुरू में इस बीमारी से ग्रसित जानवर थोड़ा पतला गोबर करता है और धीरे–धीरे पानी जैसे दस्त हो जाते हैं। कई बार दस्त में खून भी आ सकता है। दस्तों की वजह से जानवर कमजोर व निढ़ाल हो जाता है और उसमें पानी की कमी हो जाती है। शरीर में पानी की कमी आने से मृत्यु दर काफी बढ़ जाती है। दस्त की वजह से ही शावकों में मृत्यु ज्यादा होती है। बड़ी उम्र के सूअरों में भी दस्त लगते हैं। इसके साथ–साथ, इनमें तेज बुखार, भूख न लगना, सुस्ती जैसे लक्षण भी देखे जाते हैं। कुछ सूअरों में निमोनिया के लक्षण भी आ सकते हैं। छोटे बच्चों में कंपकपी, चक्कर आना आदि जैसे लक्षण भी देखे जा सकते हैं।

**cpko o jksdFkke&** इस बीमारी की पहचान लक्षण, शव परीक्षण व प्रयोगशाला में दस्त में कीटाणुओं की जाँच द्वारा की जा सकती है। जब भी सूअरों में दस्त ज्यादा हो तो जाँच करवाना अति आवश्यक है, क्योंकि दस्त लगने के एक दम बाद शरीर में पानी की कमी हो जाती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है। अगर यह पता चल जाता है कि सूअरों में सालमोनैलोसिस रोग है तब दवाई एक दम शुरू करनी चाहिए। इसके लिए निकटतम पशु चिकित्सालय में सम्पर्क करें। इस रोग का एन्टीबॉयोटिक्स व अन्य दवाइयों द्वारा ईलाज किया जा सकता है। दस्तों को जल्दी से जल्दी रोकना अति आवश्यक है। पशु बाड़ों की साफ–सफाई बहुत जरूरी है। यह देखा गया है कि जहाँ पर गन्दगी ज्यादा हो, वहाँ यह रोग ज्यादा पनप सकता है। स्वस्थ जानवर को बीमार जानवर के सम्पर्क में न आने दें। इस बात का खास ध्यान दें कि इस बीमारी से ग्रसित सूअर पीने के पानी व खाने में दस्त न कर पाएँ।

## 4- eqg&[kqj jksx

यह विषाणुओं द्वारा होने वाला एक संक्रामक रोग है। प्रायः यह रोग गाय, भैंस, भेड़ व बकरी में ज्यादा होता है लेकिन पिछले कुछ सालों में यह सूअरों में भी देखा गया है। मुँह–खुर रोग के विषाणुओं की संख्या में बीमार पशु के शरीर में बढ़ोतरी होती है। सूअरों में यह बढ़ोतरी कई गुणा ज्यादा है। इसलिए सूअरों को मुँह–खुर के विषाणु के लिए एम्पलीफायर होस्ट भी बोलते हैं। इसी वजह से सूअरों की मुँह–खुर रोग को फैलाने की क्षमता बहुत ज्यादा है। यह रोग सूअरों से अन्य पशु प्रजातियों व अन्य प्रजातियों से सूअरों में भी हो सकता है। पिछले कुछ समय से हरियाणा प्रांत में भी मुँह–खुर रोग से ग्रसित सूअर देखे गए हैं।

**y{k.k&** इस रोग से ग्रसित सूअरों में तेज बुखार, मुँह, थूथनी व जीभ पर छाले। छालों की वजह से जानवर का खाना, पीना काफी कम हो जाता है। कोई भी चीज खाने पर पषु दर्द ज्यादा महसूस करता है। लंगड़ापन कई बार छाले सूअरों के पैरों में, खुरों के आसपास व नीचे हो जाते हैं। जिसकी वजह से पशु लंगड़ाकर चलते हैं। अगर रख–रखाव व सफाई अच्छी न हो तो यह छाले बड़े घाव का रूप धारण कर लेते हैं जिसमें से रक्त स्त्राव भी हो सकता है। हालांकि इस बीमारी से बड़े पशुओं में मृत्यु दर ज्यादा नहीं होती, परन्तु बीमारी से काफी सूअर ग्रसित हो सकते हैं। छोटी उम्र के सूअरों यानि षावकों में इस बीमारी से या इस बीमारी के साथ–साथ दूसरी बीमारियों के प्रभाव से मृत्यु हो सकती है।

**cpko o jksdFkke&** बीमारी की पहचान लक्षण, शव परीक्षण व प्रयोगशाला में सैम्पलों की जाँच से हो सकती है क्योंकि यह रोग एक संक्रामक रोग है, इसलिए बीमार पशु को अगर हो सके तो स्वस्थ पशु से बीमारी का लक्षण देखते ही अलग कर दें। ऐसा नहीं है कि अलग करने से स्वस्थ पशु में यह बीमारी आएगी ही नहीं, परन्तु बीमारी आने की संभावना कम हो सकती है। इस रोग के विषाणु हवा के जरिए ज्यादा फैलते हैं, इसलिए यह जरुरी है कि साफ–सफाई की तरफ ज्यादा ध्यान दें। कुछ ऐसी दवाइयाँ बाजार में उपलब्ध हैं जिसका स्प्रे बीमारी आने के बाद बाड़ों में/शैड में, सूअरों के ऊपर किया जा सकता है। इन दवाइयों में इस रोग के विषाणु को मारने की क्षमता है। इस दवाई का प्रयोग अन्य विषाणुओं द्वारा होने वाले रोगों को भी नियंत्रित करने के लिए किया जा सकता है। बीमार सूअर का ईलाज करवाना अति आवश्यक है। लक्षणों के आधार पर बीमारी से ग्रसित सूअर को दवाई अवश्य दिलवाएँ। दूसरी बीमारी के घर करने से मृत्यु दर बढ़ सकती है इसलिए बीमार जानवरों को दवाई दिलवाना बहुत जरुरी है। गाय, भैंस आदि में टीकाकरण की तरह ही सूअरों में बचाव के लिए आप अपने निकटतम पशु चिकित्सालय से संपर्क कर सकते हैं।

# अजोलाः पशु आहार का उत्तम स्त्रोत

**सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह**

विस्तार शिक्षा निदेशालय एवं पशु प्रजनन विभाग हरियाणा

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

अजोला एक बहुत छोटी तैरने वाली फर्न है जो पानी पर बहुत तेजी से फैलती है। अजोला जिसे मच्छर फर्न या बत्तख बीड के नाम से भी जाना जाता है जैविक खाद एवं पशु आहार संपूरक के रूप में उपयोग में लायी जाता है। इस जलीय फर्न की विशेषता है कि इसी के साथ नीली हरी एलगी (बी.जी.ए.) होती है।

### v tksyk dks mxkus dk rjhdk%&

अजोला को बहुत ही आसान तरीके से पोलीथीन शीट को प्रयोग कर उगाया जा सकता है। इसके लिए केवल एक 2 मीटर लम्बाई, 1 मीटर की चौड़ाई के 15 सेंमी. गहरे गड्ढे की आवश्यकता होती है। बेहतर होगा यदि यह गड्ढा किसी वृक्ष की छाया के नीचे बनाया जाये ताकि वातावरण का तापमान 25 डिग्री सेल्सियस पर बना रहे। गड्ढा बनाने के पश्चात उसमें न्यूनतम 10 सें.मी. तक 2–3 दिनों में एकत्र किया गया 5 किलो गोबर में मिट्टी व पानी तथा 20 ग्राम एजोफर्ट पाऊडर या रॉक फॉसफेट/डी.ए.पी. मिक्स करें। यह सब कार्य करने के बाद गड्ढे में कम से कम 200 ग्राम अजोला कल्चर का छिड़काव करें।

### v tksyk mxkus ds ckn dh fØ;k,¡%&

शुरूआत में 200 ग्राम डाला गया अजोला सामान्यतया 6–8 दिनों में कई गुणा बढ़ कर फैल जाता है। गड्ढे में उपलब्ध पैदावार का कम से कम 25 प्रतिशत प्रतिदिन हटा लेना चाहिए। पौधे को पकने नहीं देना चाहिए और न ही उसमें बीज पैदा होने चाहिए। प्रतिदिन गड्ढे में से अजोला अवश्य हटा देना चाहिए ताकि ज्यादा न भरे अन्यथा अजोला की पैदावार पर बुरा असर पड़ता है।

### vkgkj ds : i esa v tksyk dh iSnkokj%&

दूध देने वाले पशुओं, बकरियों व पोल्ट्री पक्षियों के लिए अजोला बहुत ही पोषक व सस्ता आहार संपूरक है। इसे निकालने के बाद अच्छे से धोकर पानी से आधी भरी बाल्टी में रखना चाहिए। ताजा अजोला को गाय–भैंस व



बकरियों को खिलाया जा सकता है। पोल्ट्री, पक्षियों के लिए अजोला को बाजार में उपलब्ध फीड में 1:1 के अनुपात से मिला कर देना चाहिए। पशुओं को उनकी नियमित आहार व चारा के साथ अजोला की निर्धारित मात्रा ही देनी चाहिए (250 ग्राम प्रति बकरी/1 किलोग्राम प्रति गाय/भैंस को प्रतिदिन) ऐसा करने से मीट तथा दूध की मात्रा में वृद्धि होती है।

### /kku dh iSnkokj esa v tksyk dk nksgjk mi;ksx%&

अजोला वातावरण में नाईट्रोजन फिक्सिंग के लिए उत्तम हैं। पौधे की वृद्धि कई गुणा बढ़ जाती है। नाइट्रोजन की मात्रा में वार्षिक अच्छी बढ़ोतरी होती है। इससे मिट्टी की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि होती है और किसानों को ज्यादा उपज मिलती है। एक बार अजोला धान के खेतों में उग कर पूरी तरह फैल जाये तो खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। यदि लगातार तीन मौसमों तक अजोला का उपयोग किया जाये तो प्राकृतिक वनस्पतियों से धान की खेती को जैविक खेती में परिवर्तन किया जा सकता है।

### v tksyk dh [ksrh ds ykHk%&

अजोला जैविक खरपतवार नाशक के रूप में काम करता है जो मिट्टी की सतह में प्रकाश को घुसने से रोकता है जिससे धान के खेतों में जलीय खरपतवार की वृद्धि नहीं हो पाती हैं। अजोला में पौष्टिकता भरपूर होती हैं पौधा बहते पानी से पौष्टिक तत्व अवशोषित कर लेता है तथा गलने

सड़ने पर इन पौष्टिक पदार्थों को फसल के लिए उपलब्ध कराता है पानी पर बिछी अजोला की चादर पानी के पी.एच. को क्षार में तबदील नहीं होने देता जिससे सामान्यता अमोनिया की कमी नहीं होती। अजोला को सूअर, बतख, पोल्ट्री पक्षियों व गाय–भैंस के खाने के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। भारत में अजोला माइक्रोफिला, अजोला रूबरा व अजोला पिनाटा ज्यादा प्रयोग में लायी जाती है। अजोला माइक्रोफिला आहार संपूरक के रूप में उपयुक्त है जबकि अजोला पिनाटा को इसकी बायोमास उपज के कारण धान के खेतों में ड्यूल कल्चर के रूप में प्रयोग करने की अनुशंसा की जाती है। पौधे में प्रोटीन की उच्च मात्रा (20–30 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन) पाई जाती है। कृषि प्रौद्योगिकी के रूप में अजोला की खेती मंहगे हानिकारक रसायनिक खादों का सफल विकल्प साबित हो रही है। अजोला की खेती से जहां फसलों की पैदावार में वृद्धि होती है वहीं कृषि प्रदूषण कम कर धान की पैदावार बढ़ाने में किसानों की सहायक है।

**v tksyk pkjs dh [ksrh**

**v tksyk ds ykHk%&**

- इसके प्रयोग से मृदा के भौतिक और रासायनिक गुणों में सुधार होता है।
- यह कम समय में बढ़कर पानी की सतह पर एक घनी परत बना लेता है जिससे वाष्पीकरण द्वारा पानी की हानि कम होती है।
- खरपतवार कम पनपते हैं तथा रासायनिक उर्वरकों की उपयोग क्षमता बढ़ती है। यह पौधों के लिए हार्मोन्स और विटामिन उपलब्ध कराता है।
- इसके प्रयोग से फसल में बीमारी रोकने की क्षमता में वृद्धि होती है।
- यह मछली, पशु, मुर्गियों और गाय–भैंस के लिए आदर्श चारा है। प्रदूषित पानी से भारी तत्वों को सोखता है।
- फसल के लागत खर्च में कमी कर उत्पादन को बढ़ाता है।
- जैविक पदार्थों का कम समय में अधिक उत्पादन।
- उच्चतम दर पर नाइट्रोजन का स्थिरीकरण।
- पौधों में विटामिन्स एवं होर्मोन्स का स्त्राव।
- भूमि की रासायनिक तथा भौतिक दशा में सुधार।
- उर्वरकों की क्षमता में सुधार।
- पोटाश की उपलब्धता बढ़ाना।
- मृदा की जल धारण क्षमता में सुधार।
- खरपतवार के नियंत्रण में सहयोग करता है।
- जिंक, मैंगनीज, लोहा और फास्फोरस आदि की प्रचुरता के कारण मृदा की उर्वरा शक्ति में बढ़ोतरी, जो फसल की उपज के लिए गुणकारी होती है।


# 930-000-0857

whatsapp

**लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर**

# किसानों की आय बढ़ाने के प्रभावी तरीके

**संदीप, दीपक चोपड़ा, देवेंद्र बिधान एवं दिपिन चंद्र यादव**

पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

---

किसी देश की समृद्धि किसानों के कल्याण पर निर्भर करती है। दुनिया भर में, किसी विशेष रूप से छोटे और सीमांत परिश्रम करते हैं, लेकिन पर्याप्त पैसा नहीं कमाते हैं। कृषि उद्योग भारत की कुल जीडीपी में 17 प्रतिशत का योगदान देता है, जिसमें से 27 प्रतिशत पशुपालन से आता है और कुल मिलाकर, डेयरी, पोल्ट्री और मत्स्यपालन देश के सकल घरेलू उत्पाद में 4.4 प्रतिशत का योगदान करते हैं। ये संख्या हमारी अर्थव्यवस्था में इन क्षेत्रों द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाती है। गाँव की अर्थव्यवस्था कृषि और उसके संबंद्ध क्षेत्रों जैसे मुर्गी पालन, डेयरी और अन्य पर निर्भर करती है। इस क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्रों से बड़ी संख्या में युवाओं को रोजगार मिलता है। भारत के संदर्भ में कृषि में प्रमुख चुनौतियां और अन्य मुद्दे बाढ़, सूखा और तूफान के साथ–साथ उच्च लागत और गुणवत्ता वाले बीज, उर्वरक, सिंचाई, विपणन, सुविधा की कमी, कम भंडारण और प्रसंस्करण सुविधाओं आदि की उपलब्धता है। भारत में खेती छोटी, सीमांत और विभाजित भूमि जोत (लगभग 86 प्रतिषत) है और मानसून वर्षा पर अत्यधिक निर्भर है। छोटी जोत का संचालन अक्सर असम्भव होता है और इस स्थिति में खेती एक लाभदायक व्यवसाय या उद्यम नहीं है।

**fdlku dh vk; nksxquh djus esa leL;k%** जलवायु परिवर्तन, खंडित भूमि धारण, भोजन की मांग में वृद्धि, कृषि आय में कमी, उत्पादकता में कमी, प्राकृतिक संसाधनों की कमी और गिरावट आदि। व्यापार की अनुकूल शर्तों का अभाव, मानसून का समय, समय पर किसानों तक तकनीक न पहुँचना, उचित विपणन रणनीतियों का अभाव आदि। 85 प्रतिशत किसान 2 हेक्टेयर से कम भूमि वाले छोटे और सीमांत हैं। इन छोटे किसानों को बाजार से जोड़ना हमारी प्रणाली में एक और बड़ी चुनौती है। किसानों की आय बढ़ाने के लिए, उन्हें बाजारियों, व्यापारियों और निर्यातकों के साथ जोड़ना आवश्यक है। भारत में कृषि क्षेत्र के विकास के लिए अतीत की रणनीति ने मुख्य रूप से कृषि उत्पादन बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा में सुधार लाने पर ध्यान केंद्रित किया है। रणनीति ने स्पष्ट रूप से किसानों की आय बढ़ाने की आवश्यकता को नहीं पहचाना जिसके परिणामस्वरूप किसानों की आय कम हुई। गैर कृषि क्षेत्र में काम करने वालों की आय के संबंध में किसानों की आय भी कम रही। भारत में खेती से होने वाले नुकसान, कृषि आय में कमी और कम कृषि आय के कारण किसानों की आत्महत्याओं की संख्या में तीव्र वृद्धि देखी गई। कम कृषि आय खेती को छोड़ने के लिए अधिक से अधिक किसानों, विशेष रूप से कम आयु वर्ग के लिए मजबूर कर रही है। इससे देश में कृषि के भविष्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, जिससे खाद्य असुरक्षा हो सकती है, इसलिए किसानों के कल्याण को बढ़ावा देने, कृषि संकट को कम करने और किसानों की आय और गैर–कृषि व्यवसायों में काम करने वालों के बीच समानता लाने के लिए किसानों की आय दोगुनी करने की आवश्यकता है।

**fdlkuksa dh vk; esa lq/kkj dsfy, 0;kid j.kuhfr&** किसानों की आय बढ़ाना, सकल आय में वृद्धि, लागत में कमी, आय को स्थिर करना, उत्पादन में वृद्धि, उच्च मूल्य, विविध –कृषि/गैर–कृषि कम खरीदे गए इनपुट्स, शोषण संप्रदायों को नष्ट करना।

**Ñf'k mRiknu esa lq/kkj%**

**mRikndrk {k=&** कृषि उत्पादन को सिंचाई और तकनीकी प्रगति तक पहुंच के माध्यम से बढ़ाया जाना है। उत्पादन की लागत में संसाधन दक्षता या बचत का उपयोग करते हैं।

**Qly dh rhozrk esa of)] ;kuh dqy Qlyh {k= esa ck, x, uiV ,fj;k dk vuqikr&** मुख्य खरीफ के बाद और मुख्य रबी मौसम के बाद कम अवधि की फसलों को उगाकर, ताकि कृषि भूमि उत्पादक अवधि के आधे हिस्से के

लिए अप्रयुक्त न रह जाए।

**fofo/khdj.k%** फलों, सब्जियों, फाइबर, मसालों और गन्ना जैसी उच्च मूल्य वाली फसलों की ओर। वानिकी जैसे अन्य संबद्ध उद्यमों की ओर, मुख्य रूप से फसल की खेती पर निर्भर होने के बजाय डेयरिंग। खेती से गैर–कृषि व्यवसायों में किसानों को स्थानांतरित करना, गैर–कृषि क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि क्षेत्र की तुलना में 2.76 गना अधिक उत्पादक रोजगार प्रदान करते हैं।

किसानों के लिए व्यापार के संदर्भ में सुधार या किसानों द्वारा प्राप्त वास्तविक मूल्य CPIAL (कृषि श्रम के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक) का उपयोग नाममात्र खेत की आय को वास्तविक कृषि आय में बदलने के लिए एक डिफाल्टर के रूप में। फसल और आय हानि के खिलाफ बीमा प्रदान करना और खेती में निवेश को प्रोत्साहित करना।

**ufn;k dk ijLij tMko&** उत्पादन और कृषि आय बढ़ाने के लिए।

टमाटर, प्याज और आलू जैसे खराब होने वाली वस्तुओं की मूल्य अस्थिरता को दूर करना। कपास उत्पादकों को खेती की लागत को कम करने के साथ–साथ उत्पादकों को प्रौद्योगिकी के उचित हस्तांतरण के माध्यम से प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि करके आय में वृद्धि करना। देश को कृषि के लिए गुणवत्तापूर्ण बीज, उर्वरक और बिजली की आपूर्ति का उपयोग बढ़ाने की आवश्यकता है। सिंचाई के क्षेत्र में 1.78 मिलियन हेक्टेयर का विस्तार किया जाना है और हर साल डबल क्रॉपिंग के क्षेत्र में 1.85 मिलियन हेक्टेयर की वृद्धि की जानी चाहिए। इसके अलावा, फलों और सब्जियों के क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष 5 प्रतिशत की वृद्धि आवश्यक है। पशुधन के मामले में झुंड की गुणवत्ता में सुधार, बेहतर चारा, कृत्रिम गर्भाधान में वृद्धि, बछड़े के अंतराल में कमी और पहली उम्र में कम उम्र वृद्धि के संभावित स्त्रोत है।

कृषि के उत्पादन और किसानों की आय में पर्याप्त वृद्धि के लिए कृषि जैसी कृषि पद्धतियों को अपनाना। किसानों की आय में वृद्धि का लगभग एक तिहाई बेहतर मूल्य वसूली, कुशल पोस्ट फसल प्रबंधन, प्रतिस्पर्धी मूल्य श्रृंखला और संबद्ध गतिविधियों को अपनाने के माध्यम से आसानी से प्राप्य है। इसके लिए बाजार में व्यापक सुधार, जमीन के पट्टे और निजी जमीन पर पेड़ों को उठाने की आवश्यकता है। राज्यों द्वारा कृषि के लिए अधिकांश विकास पहल और नीतियां लागू की जाती है। इसलिए किसानों की आय दोगुनी करने के लक्ष्य को हासिल करने के लिए राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को संगठित करना आवश्यक है। उत्पादन और बाजार में जिम्मेदार निजी निवेश को आकर्षित करने के लिए कृषि का उदार बनाने की आवश्यकता हैं इसी तरह, एफपीओ (किसान उत्पादक संगठन) एफपीसी (किसान उत्पादक कंपनी) छोटे कृषि व्यवसाय को बढ़ावा देने में बड़ी भूमिका निभा सकती है।

**'kgn mRiknu&** मधुमक्खी की घटती आबादी भारत में कृषि वैज्ञानिकों के लिए चिंता का कारण है। फसलों के परागण में मदद करने के अलावा, शहद का उत्पादन ग्रामीण परिवारों के लिए आय का कम लागत वाला स्त्रोत हो सकता है।

**t\o bi/ku ckt kj%** जट्रोफा जैसी बायोफ्यूल फसलों को बढ़ी हुई तेल पैदावार के लिए आनुवंशिक संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए। तेल कंपनियों को ग्राम उद्यमियों को उत्पादित किए गए प्रत्येक किलो बीज और ब्राजील में किए गए हाइड्रोकार्बन ईंधन के साथ मिश्रित उत्पादन को अवशोषित करने के लिए संग्रह और प्रसंस्करण इकाइयां स्थापित करने में मदद करनी चाहिए।

**,dhÑr Ñf'k i.kkyh&** एकीकृत कृषि प्रणाली के परिणामस्वरूप कृषि तकनीक में बदलाव के पैटर्न में अधिकतम उत्पादन होता है और संसाधनों के इष्टतम उपयोग का ख्याल रखा जाता है। एकीकृत प्रणाली में उत्पादक उद्देश्यों के लिए खेत के कचरे को बेहतर तरीके से पुनर्चक्रित किया जाता है।

कृषि उद्यमों जैसे कि डेयरी, पोल्ट्री, सुअर पालन, मत्स्य पालन, सेरीकल्चर इत्यादि का विवेकपूर्ण मिश्रण दिए गए कृषि–जलवायु परिस्थितियों और किसानों की सामाजिक –आर्थिक स्थिति के अनुसार खेती में समृद्धि लाएगा।

**lefUor Ñf'k i.kkyh d ?kVd&** फसल, पशुधन, पक्षी और पेड़ किसी भी IFS के प्रमुख घटक हैं। फसल में उप–प्रणाली हो सकती है जैसे कि मोनोक्रॉप, मिश्रित / इंटरप्रॉप, अनाज की बहु–स्तरीय फसलें, फलियाँ (दालें), तिलहन, चारा आदि। पशुधन घटक दुधारू गाय, बकरी, भेड़, मुर्गी, मधुमक्खी हो सकते हैं। पेड़ के घटकों में लकड़ी, ईंधन, चारा और फलों के पेड़ शामिल हो सकते हैं।

# बरसीमः सर्दियों का बेहतरीन हरा चारा

**सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह**

विस्तार शिक्षा निदेशालय एवं पशु प्रजनन विभाग

लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

रबी की चारे वाली फसलों में बरसीम एक महत्वपूर्ण फसल है। इसका चारा पशु आहार की दृष्टि से बहुत ही स्वादिष्ट, गुणकारी एवं पौष्टिक होता है। इसके चारे में 17 से 21 प्रतिशत प्रोटीन, 12 से 15 प्रतिशत शुष्क पदार्थ एवं 65 से 75 प्रतिशत पाचनशीलता होती है। यह दिसम्बर से मई तक हरा चारा देती है। इसे हल्की खारी मिट्टी में भी उगाया जा सकता है। यह औसतन 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ प्रस्थापित करके भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है। इसके चारे की अधिक पैदावार लेने के लिए निम्नलिखित सस्य क्रियाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

**Hkwfe**

बरसीम के लिए बढ़िया जल निकास वाली दोमट व उपजाऊ भूमि ही उपयुक्त होती है। यह हल्की व रेतीली मिट्टी में अच्छी पैदावार नहीं देती।

**mUur fdLesa%** इसकी उन्नत किस्में निम्नलिखित हैः–

**eLdkoh%** यह जल्दी बढ़ने वाली, पौष्टिक एवं स्वादिष्ट हरा चारा देने वाली किस्म है। यह 5–6 अच्छी कटाइयां देने में सक्षम है। इससे 240–270 क्विंटल हरा चारा एवं 1.4–1.6 क्विंटल बीज प्रति एकड़ प्राप्त होता है।

**fglkj cjlhe 1%** यह किस्म वर्ष 2005 में हरियाणा में काष्त के लिए जारी की गई है। यह किस्म तना एवं जड़ गलन रोगों की प्रतिरोधी है। यह 5–6 अच्छी कटाइयां देने में सक्षम है। इस किस्म से 270–290 क्विंटल हरा चारा, 35–40 क्विंटल शुष्क पदार्थ एवं 1.6–1.8 क्विंटल बीज की पैदावार प्रति एकड़ प्राप्त होती है। इसके हरे चारे में प्रोटीन की मात्रा मैस्कावी से ज्यादा होती है।

**fglkj cjlhe 2%** यह किस्म वर्ष 2014 में हरियाणा में काष्त के लिए अनुमोदित की गई है। यह किस्म तना गलन बीमारी की प्रतिरोधी है। यह देर तक हरा चारा देती है। इसकी 6–7 कटाईयां ली जा सकती है। इससे 300–325 क्विं./एकड़ हरा चारा प्राप्त होता है। इससे 1.3–1.4 क्विंटल बीज प्रति एकड़ प्राप्त होता है।

**[ksr dh rS;kjh**

खेत को 2–3 बार हल से गहरा जोतकर तथा सुहागा लगाकर तैयार करना चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए खेत समतल व खरपतवार रहित होना चाहिए।

**fctkbZ dk le;**

इसकी बिजाई के लिए अक्टूबर महीना उपयुक्त है। इसके बाद बिजाई करने से कटाइयां कम आती हैं। अतः चारे की उपज भी कम मिलती है।

**cht ,oa fctkbZ**

बीज की मात्रा 8–10 किलोग्राम प्रति एकड़ प्रयोग करें। बीज हमेशा विश्वसनीय केन्द्र से ही खरीदें। पहली कटाई में अच्छी पैदावर के लिए बरसीम के साथ गोभी सरसों का 0.5 किलोग्राम बीज अथवा 10 किलोग्राम जई प्रति एकड़ मिलाएं। इसकी बिजाई पानी से भरे खेत में बीज को छिड़क कर की जाती है। बीज छिड़कते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि तेज हवा न चल रही हो।

ज्यादा पैदावार लेने के लिए 10 किलोग्राम बरसीम के बीज में 400 ग्राम सरसों का तेजी से बढ़ने वाला चाईनीज कैबेज का बीज मिलाकर बोएं। दुधारू पशुओं से अधिक दूध लेने के लिए बरसीम के साथ बिना फलीदार चारा जैसे जई, सरसों, षलगम आदि मिलाकर खिलाना चाहिए। सरसों एवं षलगम की बुआई का सही समय सितंबर के तीसरे सप्ताह से अक्टूबर के दूसरे सप्ताह तक है। जई से भी अधिक उत्पादन लेने के लिए भी 30–35 किलोग्राम बीज में 400–500 ग्राम सरसों की चाईनीज कैबेज किस्म का बीज मिलाकर इस माह के पहले पखवाड़े में बिजाई करें। ऐसा करने से बिजाई के 50–60 दिन बाद पहली कटाई पर अधिक उत्पादन प्राप्त होत है।

**ch tkSipkj&** बरसीम जहां पहली बार बोएं उन खेतों में इसके बीज को उपचारित करने की जरूरत होती है क्योंकि इसके विकास के लिए एक विशेष प्रकार के जीवाणु की जरूरत होती है जो कि उन खेतों में नहीं पाया जाता। इन जीवाणुओं का टीका स्थानीय कृषि विकास अधिकारी या माइक्रोबायोलोजी विभाग, चौधरी चरणसिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त किया जा सकता है जो कि एक एकड़ बीज के उपचार के लिए काफी हैं इस टीके के एक पैकेट की कीमत मात्र 10 रुपये है।

यदि खेत में बरसीम पहली बार बोना है तो बीज को राईजोबियम का टीका लगाकर बोएं या उस खेत की लगभग सौ किलोग्राम मिट्टी इस खेत में बिखेर दें, जहां पिछली बार बरसीम बोया गया है।

## ch tkSipkj dk rjhdk

100 ग्राम गुड़ का आधा लीटर पानी में घोल तैयार करें। इसमें बरसीम के टीके का एक पैकट मिला दें। इस घोल को 8–10 किलो बीज में अच्छी तरह मिला दें ताकि प्रत्येक बीज के ऊपर इसका लेप लग जाए। अन्त में बीज को छाया में सुखाएं।

## moZjd izcU/ku

एक एकड़ बरसीम के लिए 10 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 28–30 कि.ग्रा. फास्फोरस उर्वरक बिजाई से पहले दें। (इसके लिए 22 किलोग्राम यूरिया व 175 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग करें)।

## flapkbZ;k

फसल बोने के चार से सात दिन बाद पहली सिंचाई व 15 से 20 दिन बाद दूसरी सिंचाई कर देनी चाहिए। बरसीम में पहली सिंचाई महत्वपूर्ण है जो हल्की मिट्टी में बिजाई के 3–5 दिन बाद व भारी मिट्टी में 8–10 दिन बाद अवश्य दें। इसके बाद की सिंचाइयां अक्टूबर व नवम्बर माह में 10–12 दिन के अन्तर पर और दिसम्बर से फरवरी तक 15–20 दिन के अन्तराल पर तथा मार्च, अप्रैल व मई के महीनों में 10–12 दिन के अन्तर पर दें।

## dVkbZ izcU/ku

पहली कटाई बिजाई के 55 से 60 दिन बाद लें। सर्दियों में 35 से 40 दिन व बसन्त ऋतु में 25 से 30 दिन के अन्तराल पर कटाइयां लें।

## pkjs dh iSnkokj

बरसीम की कुल 5–6 कटाइयां मिल जाती है और इस प्रकार 250–300 क्विंटल हरा चारा प्रति एकड़ प्राप्त हो जाता है।

## ch t mRiknu

बीज लेने के लिए अन्तिम कटाई मार्च के तीसरे सप्ताह में करनी चाहिए। यदि कासनी व किसी अन्य प्रकार के पौधे खेत में हों तो उनको निकाल देना चाहिए। अन्तिम कटाई के बाद एक सिंचाई अवश्य दें तथा इसके बाद दो सिंचाइयां 15 दिनों के अन्तराल पर दें। मई के अन्त या जून के पहले सप्ताह तक बीज पक कर तैयार हो जाता है। इस तरह 1.5 से 2.0 क्विंटल बीज प्रति एकड़ प्राप्त हो जाता है। पकी हुई फसल को सुबह–सुबह काटना चाहिए ताकि डोडियां न झड़ें।

## gkfudkjd dhM+s o mudh jksdFkke

1- **dkyh phaVh%** यह बिजाई के बाद, अंकुरित होने से पहले ही बीज को उठा ले जाती है। इन चींटियों के रहने वाले स्थानों का पता लगाकर वहां मिथाईल पैराथियान (2 प्रतिशत धुड़े) का बुरकाव करें।

2- **lrgh fVM~Mk%** यह कीड़ा बरसीम को बड़ी तेजी से अप्रैल महीने में खाता है। इस दौरान 90 प्रतिशत से अधिक कीड़े बरसीम के खेत में अन्य फसलों से आकर आक्रमण करते हैं। 400 मि.ली. मैलाथियान/सायथियान/मैलटाफ/मेलामार (50 ई.सी.) को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़कें। यदि बरसीम बीज लेने के लिए बोई गई हो तो इस कीड़े की रोकथाम मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत धुड़े (10 कि.ग्रा. प्रति एकड़) के द्वारा करें। यदि फसल को चारे के रूप में पशुओं को खिलाना है तो केवल मैलाथियान का प्रयोग ही करना चाहिए और इसके छिड़काव के कम से कम 10 दिन बाद ही इसके चारे को पशुओं को खिलाना चाहिए।

## fcekfj;k¡ ,oa mudh jksdFkke

## rus xyu jksx&

**dkj.k ,oa y{k.k%** फफूंद जो की बीज में अथवा जमीन में रहता है, तने के निचले भाग पर आक्रमण करता है।

फलस्वरूप तना सड़ना शुरू हो जाता है। यह सफेद रूई जैसा माईसिलियम बनाता है जो कि जमीन पर पड़े गले–सड़े पदार्थों पर बढ़ना शुरू करता है और यह फफूंद सूखते हुए बरसीम के खेत में आसानी से दिखाई देता है।

## mipkj

1. बिजाई से पहले रोग मुक्त खेत का चुनाव करें।
2. रोग की अधिकता वाले क्षेत्रों में 2–3 वर्ष का फसल चक्र अपनाएं।
3. रोग रोधी किस्म हिसार बरसीम–1 व हिसार बरसीम–2 उगाएं।

जहां फसल में बीमारी दिखाई दे वहां निम्नलिखित विधियों को प्रयोग में लाएं।

- फसल को काट दें ताकि मिट्टी को धूप लग जाए।
- 0.1 प्रतिशत (1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से) बाविस्टीन के घोल से भूमि को सिंचित करें। इस काम के लिए एक वर्गमीटर क्षेत्र के लिए 10 लीटर घोल काफी है।

हरे चारे की अधिकता होने पर अच्छी तरह से कटाई कर लें और एक गड्ढे में डालकर दबाकर प्लास्टिक की सीट से ढक दें। ऐसे साईलेज बनाकर हरे चारे के 85 से 90 प्रतिशत पोषक तत्व कायम रह सकते हैं और दूसरी फसल भी समय पर बोई जा सकती है।


# विस्तार शिक्षा निदेशालय

**लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार**

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

# नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

**पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)**

**(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।**

# ऊँट में होने वाले प्रमुख संक्रामक रोग

**राजेन्द्र यादव, सीताराम गुप्ता एवं मनोहर लाल सैन**

पशु नैदानिक चिकित्सा विज्ञान विभाग

राजस्थान पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

ऊँट रेगिस्तानी परिस्थितियों में भली–भांति अनुकूलित पालतु पशु है। यह पशु लंबे समय तक बिना पानी पिए भी रह सकता है। यह अपने शरीर के 30 प्रतिशत के बराबर पानी की क्षति को भी सहन कर सकता है। इसके शरीर की बनावट एवं कार्यिकी इस प्रकार की होती है कि इसमें पानी को शरीर में बनाये रखने कि अनूठी क्षमता होती है। ऊँट एक ठंडी रात में 100–150 किलोमीटर तक कि यात्रा आसानी से कर सकता है। भारत में पाई जाने वाली एक कूबड़ ऊँट की प्रजाति का वैज्ञानिक नाम "कैमलस ड्रोमेडेरी" है। एक व्यस्क ऊँट का वजन लगभग 400–700 किलोग्राम तक होता है तथा औसत ऊंचाई लगभग 2.2 मीटर तक होती है। ऊँट को हमारे देश में मुख्यतः परिवहन (बोझा ढोहने), दूध एवं फाईबर (ऊन एवं बाल) उत्पादन इत्यादि के काम में लिया जाता है। प्राकृतिक एवं शारीरिक रूप से काफी मजबूत होने के बावजूद भी ऊँट में कई प्रकार के संक्रामक रोग हो सकते हैं। ऊँट में पाये जाने वाले विभिन्न संक्रामक रोग जीवाणु, विषाणु, परजीवी, फफूंद जनित एवं अन्य मिश्रित संक्रमण हो सकते हैं। ऊँट में होने वाले मुख्य संक्रामक निम्नलिखित हो सकते हैं :–

**¼1½ FkuSyk jksx %&** रेगिस्तान में ऊंटनी को एक अच्छा दुधारू पशु माना जाने लगा है। सूखे अथवा अकाल के समय जब अन्य दुधारू पशु दूध देना कम कर देते हैं तो ऐसे समय में ऊंटनी की दूध उत्पादन क्षमता में कोई विशेष कमी नहीं आती है। थनैला रोग दुधारू पशुओं में लेवटी एवं थनों को प्रभावित करने वाली समस्या है, जो कि समस्त पशु प्रजातियों के मादा पशुओं जैसे कि गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊंटनी इत्यादि में देखने को मिलता है। अधिकांशतः यह रोग जीवाणु संक्रमण के कारण होता है। इस रोग के जीवाणुओं का प्रसारण संक्रमित पानी, बिछावन, दूध निकालने के काम आने वाले बर्तनों, दूध दोहने वाले व्यक्ति के हाथों इत्यादि के कारण हो सकता है। दूध निकालते समय वातावरण में



पाई जाने वाली अस्वच्छता, पशु की लेवटी या थनों की चोट तथा अपूर्ण दूध निकालना पशु को थनैला रोग के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। सामान्यतः दुधारू पशु के दुग्धकाल के प्रारम्भ या आखिर समय में थनैला रोग होने की संभावना ज्यादा होती है तथा व्यस्क/अधिक आयु वाले पशु इस रोग से अधिक प्रभावित होते हैं। थनैला रोग से प्रभावित ऊंटनी में पाये जाने वाले लक्षणों में दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता में गिरावट, लेवटी या थनों में सूजन एवं दर्द, दूध में छिछड़े या खून आना या कई बार तो बिल्कुल भी दूध ना आना या दूध की जगह पानी जैसा पदार्थ निकलना, पशु की लेवटी या थनों का पत्थर की तरह सख्त हो जाना या लेवटी और थनों में गांठ बन जाना तथा कई बार पशु को बुखार आना एवं भूख कम हो जाना इत्यादि हो सकते हैं। बहुत बार अलाक्षणिक थनैला भी देखने को मिलता है, जिसमे केवल ऊंटनी के दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता में कमी देखने को मिलती है। अलाक्षणिक थनैला के कारण पशुपालकों को ज्यादा आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है, क्योंकि लक्षणविहीन होने के कारण पशुपालकों का ज्यादा ध्यान इस तरफ नहीं जा पाता है एवं समय पर उचित उपचार नहीं हो पाता है।

**¼2½ czqlsyksfll@ekYVk cq[kkj%&** पशुओं में ब्रुसेलोसिस अथवा माल्टा बुखार नामक रोग गाय, भैंस, ऊँट, घोड़ा, भेड़, बकरी, सूअर एवं कुत्ता आदि प्रजातियों में "ब्रुसैला" नामक

जीवाणु के संक्रमण की वजह से होता है। इस रोग से प्रभावित गर्भवती मादा पशुओं में गर्भकाल की आखरी तिमाही में गर्भपात होने के साथ–साथ जेर चमड़े जैसी हो जाती है। इसके अलावा प्रभावित पशु कभी–कभी बुखार आना, जोड़ों में दर्द एवं लेवटी में सूजन जैसे लक्षण भी देखने को मिलते हैं। प्रभावित नर पशुओं के अंडकोशों में सूजन आ जाती है एवं प्रजनन क्षमता काम हो जाती है। एक बार मादा पशुओं में गर्भपात होने पर "ब्रुसैला" जीवाणु शरीर में शांत अवस्था में पड़े रहते हैं एवं अगली बार फिर से गर्भ धारण करने पर गर्भपात की संभावना बनी रहती है। पशुओं में ब्रुसेलोसिस नामक रोग का प्रभावी उपचार उपलब्ध नहीं है तथा इससे प्रभावित पशु को अन्य पशुओं से अलग करना पड़ता है। जिस मादा पशु में गर्भकाल की आखरी तिमाही में गर्भपात होता है उसमें ब्रुसेलोसिस रोग पाए जाने की बहुत अधिक संभावनाएं होती हैं तथा ऐसे पशु को जब तक योनि से स्त्राव निकलता है उसे अन्य पशुओं से बिल्कुल अलग रखना चाहिए तथा आसपास की जगह को एंटीसेप्टिक घोल से धोना चाहिए। ऐसे पशु का दूध खासकर कच्चा दूध बिल्कुल भी नहीं पीना चाहिए अन्यथा मनुष्य में भी यह रोग हो सकता है।

**¼3½ {k; jksx@Vh- ch-¼&** क्षय रोग अथवा टी.बी. की बीमारी "माइकोबैक्टीरियम" नामक जीवाणुओं के संक्रमण से होती है। इस रोग में पशु के शरीर का कोई भी अंग प्रभावित हो सकता है लेकिन फेफड़े विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। इस बीमारी से प्रभावित पषु में हल्का बुखार, खाने–पीने में गिरावट तथा पशु शारीरिक रूप से धीरे–धीरे कमजोर होने लगता है। ऊँटों में लंबे समय तक कमजोरी एवं सामान्य उपचार जब सार्थक सिद्ध नहीं होते हैं तो क्षय रोग की शंका को दर्शाते हैं। खाँसी या साँस लेने में वृद्धि दर के रूप में साँस की समस्याएं, दस्त लगना, तेजी से वजन घटना एवं त्वचा के रोगों के रूप में लक्षण अचानक शुरू हो सकते हैं या फिर ऐसा भी हो सकता है कि संक्रमित ऊँट में कोई भी लक्षण नहीं दिखें जब तक कि संक्रमण अत्यधिक न हो चुका हो क्योंकि क्षय रोग के प्रारम्भिक संक्रमण से नैदानिक लक्षणों के विकास तक कई महीने या साल भी लग सकते हैं। ऊँट में क्षय रोग कि शंका होने पर तुरंत पशु चिकित्सक कि सलाह लेना अति आवश्यक है अन्यथा इस बीमारी के जीवाणु अन्य पशुओं तथा मनुष्यों में भी फैल सकते हैं एवं उनमें भी रोग पैदा कर सकते हैं।

**¼4½ pipd jksx@ekrk jksx¼&** ऊँट प्रजाति में होने वाला यह एक विषाणु जनित संक्रामक रोग है। यह रोग युवा ऊँट एवं गर्भवती ऊँटनियों को ज्यादा प्रभावित करता है। ऊँटों में इस रोग का संक्रमण प्रत्यक्ष संपर्क (स्वस्थ ऊँट का रोगग्रस्त ऊँट के सम्पर्क में आना), अप्रत्यक्ष सम्पर्क (रोगग्रस्त ऊँट के इस्तेमाल में लिए गए विभिन्न सामान का स्वस्थ ऊँट के सम्पर्क में आना) तथा वाहक (मच्छरों एवं चिचड़ों इत्यादि से) के द्वारा हो सकता है। संक्रमण के बाद इस रोग की ऊष्मायन अवधि ऊँट प्रजाति में 3 से 15 दिन तक हो सकती है। इस रोग के शुरुआती लक्षणों में बुखार, लिम्फनोड में सूजन एवं पूरे शरीर पर घाव बन जाते हैं। इन घावों की शुरुआत पशु की त्वचा पर लगभग 1 सेंटीमीटर से छोटे बिना स्त्राव वाले फफोलों से होती है जो बाद में स्त्राव वाले बड़े आकार के फफोलों में बदल जाते हैं। इन बाहरी लक्षणों की शुरुआत सर्वप्रथम सिर, नथुनों, आँखों की पलकों एवं गर्दन से होती है, जो कि धीरे–धीरे पूरे शरीर पर फैल जाते हैं। इस रोग कि तीक्ष्ण अवस्था से प्रभावित ऊँटों के शरीर में आंतरिक घाव हो जाते हैं, भूख कम हो जाती है एवं दस्त लग सकते हैं। गर्भवती ऊँटनियों में गर्भपात भी हो सकता है। तीक्ष्ण अवस्था से प्रभावित पशुओं में समय पर उचित उपचार नहीं करवाने पर पीड़ित पशु में द्वितीयक संक्रमण एवं सेप्टिसीमिया से मृत्यु भी हो सकती है।

**¼5½ ljk@frcjlk¼&** सर्रा ऊँट प्रजाति में होने वाला रक्त परजीवी जनित एक प्रमुख एवं गंभीर संक्रामक रोग है। राजस्थानी भाषा में इस रोग को तिबरसा भी कहा जाता है क्योंकि यह रोग ऊँट में 3 साल तक भी चल सकता है। ऊँट में सर्रा रोग "ट्रीपैनोसोमा ईवांसी" नामक एक रक्त परजीवी से होता है। यह परजीवी रक्त चूसने वाली "टेबनस" नामक मक्खी के काटने से बीमार पशु से स्वस्थ पशु में फैलता है। यह रोग आमतौर पर बरसात के मौसम में या उसके बाद फैलता है, क्योंकि इन दिनों में इस रोग को फैलाने वाली वाहक मक्खियों की संख्या काफी अधिक होती है। इस रोग की तीव्र अवस्था में शुरुआत में कोई खास लक्षण दिखाई नहीं देते हैं, हालाँकि थोड़े दिनों के बाद ऊँट के उठने–बैठने में कमजोरी दिखाई देने लगती है, आँखों की चमक कम हो जाती है, ऊँट का कूबड़ (थुई) धीरे–धीरे कम होने लगती है, छाती पर सूजन आ जाती है, सांस लेने में

कठिनाई होने लगती है तथा नाक से स्त्राव आने लग जाता है तथा ऐसी अवस्था में समय पर उचित उपचार नहीं मिलने पर 6 से 12 दिन में इस रोग से प्रभावित ऊँट की मृत्यु भी हो सकती है। सर्रा रोग की चिरकालीन अवस्था अन्य पशुओं की बजाय ऊँटों में ज्यादा पाई जाती है। इस अवस्था में सामान्य ज्वर रहता है तथा जैसे–जैसे यह रोग बढ़ता है वैसे–वैसे ही ज्वर में वृद्धि कम होती जाती है। ऊँट में कमजोरी, कूबड़ (थुई) का धीरे–धीरे कम होना, खुरदरी त्वचा, शरीर में रक्त की कमी, शरीर के निचले हिस्सों में सूजन आना इत्यादि मुख्य लक्षण दिखाई देते हैं। इस रोग की चिरकालीन अवस्था से प्रभावित ऊँटों में रोग की अवधि लगभग 3 साल (तिबरसा) तक की हो सकती है। यदि समय पर उपचार नहीं किया जाए तो रोग से प्रभावित ऊँट की अत्यधिक कमजोरी, रक्त की कमी एवं फेफड़ों में शोफ के कारण मृत्यु भी हो सकती है।

**¼6½ nkn@[kkt@[kqtyh%&** ऊँटों में पाए जाने वाले यह विभिन्न संक्रामक त्वचा रोग हैं। दाद (रिंगवर्म) एक त्वचा पर होने वाला "माइक्रोसपोरम" फफूंद जनित रोग है, जिसमें कि शरीर पर सिक्के के आकार के जख्म हो जाते हैं तथा यह शरीर के किसी भी हिस्से में हो सकते हैं। दाद मुख्यतः बरसात के समय ज्यादा होते हैं जब वातावरण में आर्द्रता की मात्रा ज्यादा होती है। खाज–खुजली जिसको कि आम भाषा में पांव भी बोलते हैं, ऊँट में एक बाह्य परजीवी जनित रोग है जो कि "सरकोपाटिस स्केबीएई" नामक माइट के कारण होता है। यह रोग कुपोषण से प्रभावित ऊँटों में एवं अत्यधिक भीड़–भाड़ वाली जगह पर तथा सर्दियों के अंत में या बसंत ऋतु के शुरुआत में ज्यादा पाया जाता है। इसमें प्रभावित ऊँट के शरीर के कम बालों वाले स्थानों पर खासकर खुजली की शिकायत हो जाती है, जो कि बाद में जख्म का रूप भी ले सकती है तथा अन्य पशुओं में भी आसानी से फैल सकती है।

पशुपालकों को चाहिए कि उनके ऊँटों में उपरोक्त रोगों के कोई भी लक्षण दिखाई देने पर अपने पशु चिकित्सक कि देखरेख में समय पर उचित एवं पूरा उपचार करवाएं।

# पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान का समाज में महत्त्व

**कृष्ण लाल दहिया[1] एवं जसवीर सिंह पंवार[2]**

[1]पशु चिकित्सक, राजकीय पशु हस्पताल, हमीदपुर (कुरुक्षेत्र) हरियाणा
[2]उपमण्डल अधिकारी, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, थानेसर (कुरुक्षेत्र) हरियाणा

क्या पशु चिकित्सक रहित विश्व की कल्पना की जा सकती है? पहली बार 1796 में एडवार्ड जेनर ने एक चेचक से ग्रसित बच्चे को गौ–चेचक के विषाणुओं को लगाया था जिस कारण मानवों एवं पशुओं में टीकाकरण शुरू हुआ। इसी प्रकार रोगवाहक जनित बीमारियों की रोकथाम एवं खातमें की अतुलनीय खोज भी पशु चिकित्सकों ने की है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मनुष्यों में लगभग 17 प्रतिशत संक्रामक रोग रोगवाहकों से फैलते हैं। पशुओं से मनुष्यों में फैलने वाले रोगों को भी पशु चिकित्सक ही चिन्हित करते हैं। अतः पशु चिकित्सक प्रत्यक्ष तौर पर मानवीय सेवा में लगातार प्रयासरत हैं। अतः पशु चिकित्सक रहित विश्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ज्यादातर सूचनीय खाद्य जनित रोग पशुजन्य संक्रामक रोगजनकों से संदूषित हुए खाद्य पदार्थों के माध्यम से फैलते हैं। इस तरह के प्रकोप की जांच मंर पशु चिकित्सा सेवाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। चीनी कृषि वैज्ञानिक अकादमी के अनुसार खाद्य आहार जनित पशुजन्य रोगों से लड़ने के लिए कारगर निगरानी प्रणाली, जोखिम मूल्यांकन एवं उचित प्रबंधन प्रणाली की स्थापना की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रभावी रोकथाम और नियंत्रण रणनीतियों को विकसित करने के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य कर्मियों, पशु चिकित्सकों और खाद्य सुरक्षा विशेषज्ञों के बीच रचनात्मक वार्ता और सहयोग आवश्यक है। पशु चिकित्सक एक श्रृंखला की तरह है जो ज्ञान–विशेषज्ञता के मानकों के आधार पर पशुओं के स्वास्थ्य एवं उनके कल्याण और जनस्वास्थ्य परीक्षण करता है। दूध, अण्डा और मीट मनुष्य के खाद्य आहार के अंग हैं।

## i'kq dY;k.k

"अच्छा पशु कल्याण–अच्छी खाद्य सुरक्षा" का द्योतक है। सार्वजनिक जन स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य और पशु कल्याण वास्तव में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और इसके लिए समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है। उदाहरणस्वरूप, तनावग्रस्त पशुओं में रोगों से संक्रमित होने की अधिक संभावना है, जिसके लिए पशु चिकित्सा उपचार की आवश्यकता होती है। किसी भी प्रकार का तनाव पशुजन्य उत्पादों में अवशेषों की उपस्थिति में वृद्धि करता है, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। इस प्रकार देखा जाए तो यह उदाहरण पशु कल्याण, पशु स्वास्थ्य और सार्वजनिक जन स्वास्थ्य के बीच की कड़ी पर प्रकाश डालता है।

पशुपालकों की जिम्मेदारी है कि उसके पशुजन्य उत्पाद खरपतवारनाशकों, कीटनाशकों और पशु चिकित्सा औषधियों से अवशेषमुक्त हों, इसके साथ ही उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पशु स्वास्थ्य, पशु कल्याण या पशुजन्य संक्रामक रोगों से जुड़े खतरों को केवल विशेष रूप से तैयार पशु स्वास्थ्य योजना के अंतर्गत ही सुनिश्चित तौर पर नियन्त्रित किया जा सकता है। पशु चिकित्सक ही इन योजनाओं को तैयार करके उपभोक्ताओं को आश्वस्त कर सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि पशुओं एवं मनुष्यों में रोगाणुरोधी दवाइयों का प्रयोग होता है। लेकिन हमें पशुओं एवं मानवीय कल्याण को भी नहीं भूलना चाहिए। इसलिए पशुओं में रोगाणुरोधी दवाओं के उपयोग को सीमित करने के लिए पशु चिकित्सकों को सक्रिय रूप से विभिन्न प्रकार चर्चाओं में शामिल होना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पशुपालन के विभिन्न मॉडलों को अच्छे पशु कल्याण की गारंटी के लिए अनुकूलित किया जा सके।

## lekt esa fgalk dk de djuk

कई बार पति–पत्नि के झगड़े का परिणाम बच्चों और पालतु पशुओं को भुगतना पड़ता है। यही झगड़ा आगे बढ़ने पर हिंसात्मक रूप धारण कर लेता है जिससे पति या पत्नी, बच्चों या पालतु पशुओं को पीटना शुरू कर देते हैं इसलिए कहा जाता है कि कमजोर का कोई जोर नहीं चलता है।

यही असहाय बच्चे अपना गुस्सा घर के बर्तनों या छोटे पालतु पशुओं पर निकालते हैं जो बड़े होकर और अधिक हिंसात्मक रवैया अपना सकते हैं। इसी प्रकार जब एक व्यस्क को क्रोध आता है तो वह अपने पालतु पशुओं को इस कद्र पीटता है कि कई बार पशु की मृत्यु भी हो जाती है। किसी भी व्यस्क के क्रोध का सामना दुधारू पशुओं, खासकर पहले ब्यांत के पशुओं को जब वे दुग्ध दोहन के समय उसे परेशान करते हैं, को करना पड़ता है। ऐसे पशुओं में भय उत्पन्न हो जाता है जिससे उनमें संक्रमण होने का खतरा भी बढ़ जाता है। संक्रमित पशु के दूध में रोगाणु उत्सर्जित होने से आहार श्रृंखला के प्रदूषित होने का खतरा भी हो जाता है।

शोध बताते हैं कि पशुओं के प्रति हिंसात्मक व्यवहार करने मनुष्यों में अन्य मनुष्यों के प्रति भी हिंसात्मक व्यवहार के सम्बन्ध हैं। इन में सबसे ज्यादा महिलाएं प्रभावित होती हैं। इन पीड़ित महिलाओं में भी 18 से 24 वर्ष की अन्तरंग महिला साथी ही सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं। "यह विश्वास सत्य सिद्ध है कि एक हिंसक व्यक्ति कई पशुओं एवं मानवों को हानि पहुंचा सकता है"। एक आश्रयगृह में प्रवेश पाने वाली 38 पीड़ित महिलाओं पर किये गये सर्वेक्षण में पाया गया कि 71 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उनका साथी उसके पालतु जानवरों को पीटता था या उनको घायल कर देता था या एक या दो को मार दिया था। इस प्रकार कई अध्ययनों में, पशुओं के प्रति हिंसा के इतिहास वाले लोगों में अन्य लोगों के प्रति हिंसा का प्रदर्शन करने का खतरा ज्यादा देखने में पाया गया है। एक पूर्ववर्ती अध्ययन, जिसमें कैद किये गये अपराधियों के इतिहास की जांच की गई, पाया गया कि इन कैदियों का बचपन और किशोरावस्था के दौरान अक्सर पशुओं के प्रति हिंसा का लम्बा इतिहास था।

पशु चिकित्सक पशु क्रूरता मामलों की जांच और अभियोजन पक्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे संदिग्ध पशु दुर्व्यहार के सम्बन्ध में संवाददाताओं के रूप में कार्य करते हैं और चिकित्सकीय जांच के दौरान परीक्षक तथा परीक्षण के दौरान विशेषज्ञ के साक्षी होते हैं। कुछ लोगों की पशुओं के प्रति क्रूर होने की सम्भावना भी होती है इसलिए जांच के दौरान पशु चिकित्सक पशुओं के प्रति क्रूरता का साक्षी व उनको पहचान करने की विशेष स्थिति में होता है। इस प्रकार देखा जाए तो दोषी को सजा मिलने के डर से पशुओं के प्रति क्रूरता कम हो सकती है व साथ ही पशु चिकित्सक आमजन को पशुओं के प्रति उदार रवैया अपनाने का प्रेरणा स्त्रोत होता है व भविष्य में घटने वाले हिंसक अपराधों को भी कम करने में सहयोगी बन सकता है।

## vk"kf/k lnn"k.k

पशु चिकित्सक पशुपालकों को अपने फार्म पर पशुओं को दी जाने वाली दवाइयों का सही रिकॉर्ड रखने के लिए प्रेरित करते हैं ताकि पशुजन्य उत्पादों में इन दवाइयों के अवशेष न आएं। दवाइयों के प्रति रोग–प्रतिरोधकता के कारण दवा प्रतिरोधक रोगाणु पशुजन्य खाद्य उत्पादों को संदूषित करते हैं जिनको केवल पशु चिकित्सक की सहायता से ही सही दवाई के प्रयोग से दूर किया जा सकता है। इस प्रकार देखा जाए तो पशु चिकित्सक पशुपालकों के माध्यम से पशुजन्य उत्पादों को सुरक्षित रखता है।

## ,d fo'o] ,d fpfdRlk] ,d LokLF;

इस सदी के आरम्भ में गंभीर तीव्र 'वसन रोग' अर्थात् सार्स, एवियन इन्फ्लुएंजा एच5एन1 और अन्य मनुष्यों में उभरती हुई अन्य पशुजन्य महामारियों ने मनुष्यों एवं संग्राहक पशुओं में महामारी के रोगकारक के सम्बन्ध की ओर ध्यान आकर्षित किया। इन महामारियों ने एक स्वास्थ्य के सिद्धांतों को लागू करने वाले बहुआयामी टीमों द्वारा ऐसी बीमारियों के वैश्विक नियंत्रण के कार्यान्वयन को प्रेरित किया है।

इसी प्रकार 'एक बीज–एक स्वास्थ्य' को सकारात्मक रूप से अवश्य ही सोचना चाहिए। यदि ऐतिहासिक तथ्यों को 'एक स्वास्थ्य' पर सकारात्मक रूप से प्रतिबिंबित किया जाए तो यह स्वयंसिद्ध होगा कि आज के पशु चिकित्सा व्यवसाय और भविष्य में 'एक स्वास्थ्य' की नीतियों में अच्छी तरह से प्रशिक्षित होना चाहिए, एक स्वास्थ्य की जटिल चुनौतियों को हल करने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोणों की मजबूत वकालत करनी चाहिए और निर्णायक नेतृत्व प्रदान करना चाहिए। 'एक स्वास्थ्य' के नियमों को पूरा करने में पशु चिकित्सा व्यवसाय की अनुक्रिया भविष्य के लिए एक लिट्मस परीक्षण की तरह होगी।

पशु चिकित्सक पशुओं में आहारीय जनित रोगों जैसे कि विभिन्न प्रकार के तत्वों की कमी अथवा विषाक्कता आदि के लक्षणों से भली–भांति परिचित होता है। अतः वह

आहारीय जनित बीमारियों को उचित आहार प्रबन्धन के माध्यम से नियन्त्रित करने में सक्षम होता है। पशुओं के उत्पादों में किसी जहरीले तत्वों जैसे कि कीटनाशकों अथवा खरपतवारनाशकों के अवशेषों से उत्पन्न रोग की पहचान करके प्रभावित पशु के दूध अथवा उत्पाद के सेवन को मानवीय उपयोग के लिए वर्जित करता है ताकि संबंधित परिवार के सदस्य इससे बच सकें। साथ ही वह पशुपालकों को चारे या अन्य किसी भी प्रकार के कृषि उत्पाद में जहरीले रसायनों के उपयोग से बचने की सलाह देता है। इस प्रकार देखा जाए तो पशु चिकित्सक 'एक विश्व, एक चिकित्सा एवं एक स्वास्थ्य' की कल्पना पूरी करने में सक्षम होता है। अतः 'एक स्वास्थ्य' को हासिल करने के लिए आवश्यकता है तो एक मंच पर संबंधित विभिन्न विभागों के आने की।

### ekuo lekt esa i'kq fpfdRlk vuqla/kku egÙo

पशु चिकित्सा अनुसंधान के अंतर्गत पशुओं की बीमारियों की रोकथाम, नियन्त्रण, निदान एवं उपचार पर शोध कार्य किया जाता है। इसके साथ ही पशु चिकित्सा अनुसंधान में पशुओं की मूलभूत जीवविज्ञान, कल्याण एवं देखभाल पर शोध किया जाता है। पशुओं एवं मानवों एवं पशु–मानव दोनों पर चिकित्सा अनुसंधान किये जाते हैं। जिनमें खाद्य सुरक्षा, वन्यजीवन और पारिस्थितिक तंत्र स्वास्थ्य, पशुजन्य रोग और सार्वजनिक नीति आदि शामिल हैं। इस प्रकार पशु चिकित्सा अनुसंधान में प्रजातियों की सीमाओं के पार भी कार्य किया जाता है।

### i'kq vkgkj& tu [kk| J`a[kyk

पशुओं के आहार में मौजूद घातक तत्व या रोगाणु उत्पादित पदार्थों जैसे कि दूध, अण्डा, मीट इत्यादि में आने से जन खाद्य आहार श्रृंखला में प्रवेश करने से जन स्वास्थ्य



Source: Veterinary Bulletin 2010, 1(1)

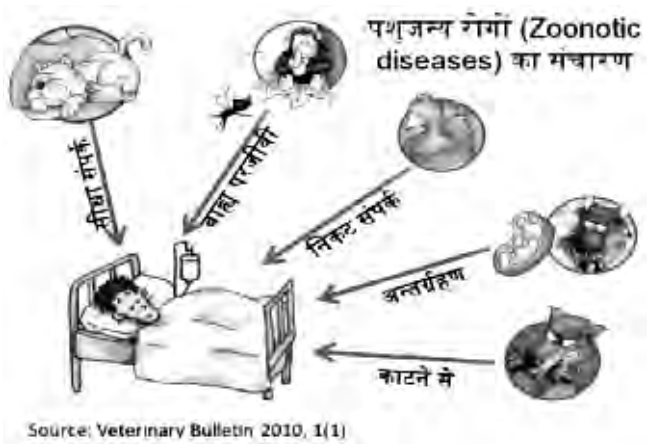

हानि पहुंचाते हैं। कृषि में उपयोग किये जाने वाले रसायन चारे के माध्यम से पशुओं में प्रवेश करते हैं जो अन्ततः दूध, मीट, अण्डा आदि पदार्थों के माध्यम से खाद्य–आहार श्रृंखला में पहुंचकर जन स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार कुछ रोगाणु जैसे कि सालमोनेला इत्यादि भी फीड के सुदूषण से जन खाद्य आहार श्रृंखला में प्रवेश करते हैं। इन सबकी रोकथाम एवं नियन्त्रण में पशु चिकित्सक मुख्य भूमिका निभाते हैं।

### i'kqtU; jksx

पशु चिकित्सक रोगियों के रोग को पहचानने में प्रशिक्षित होते हैं। इनमें से पशुजन्य रोग महत्त्वपूर्ण हैं जो पशुओं से मनुष्यों में संचारित होते हैं। दाद, खुजली आदि चर्म रोग पशुओं से सीधे संपर्क करने से फैलते हैं। पीत ज्वर वानरों से मच्छरों के काटने से फैलता है। बर्ड फलू, प्लेग, सीटेकोसिस पशुओं से निकट संपर्क से फैलता है। बोवाईन स्पोंजिफोरम एनसेफालाईटिस, ई. कोलाई, साल्मोनेला एवं एन्थ्रेक्स इत्यादि संदूषित भोजन के खाने से फैलता है। रेबीज कुत्ते या बिल्ली के काटने से फैलता है। यदि पशुओं में कोई रोग होता है तो पशु चिकित्सक उस रोग की पुष्टि करने के साथ–साथ उसका नियन्त्रण भी करता है। इसके साथ यह भी सुनिश्चित करता है कि रोगाणु दूध, अण्डा या मीट के माध्यम से आहार श्रृंखला में प्रवेश न करें। यदि रोगाणु आहार श्रृंखला में प्रवेश कर जाते हैं तो रोग के नियन्त्रण के बाद पशु चिकित्सक पुष्टि करता है कि अब रोगाणु आहार श्रृंखला में नहीं हैं और यह मानवीय भोजन के लिए ठीक है।

### yqIrçk; çtkfr;ksa dk çcU/ku

विलुप्तप्राय वनीय प्रजातियाँ एक चिन्ता का विषय है। उनका प्रतिस्थापन किया जाना अति आवश्यक है अन्यथा ऐसी प्रजातियाँ विलुप्त हो जाएगी। इन गंभीर रूप से लुप्तप्राय प्रजातियों के प्रतिस्थापन में वनीय आबादी को स्थिर करने, बन्द आश्रय गृहों में उनका प्रजनन और चयनित स्थानों पर पुनः उनके वनीय क्षेत्रों में छोड़े जाने के प्रयास में स्थानीय प्रबंधन शामिल किये जाने चाहिए। ऐसे कार्यक्रमों के लिए पशु चिकित्सकीय सलाह, सहायता, योजना और कार्यान्वयन पहलुओं में एक अभिन्न अंग होना चाहिए। उचित, मानकीकृत तकनीकों की सहायता से बन्दी आश्रय गृहों में इन विलुप्तप्राय वन्य जीवों की घटती आबादी की समस्याओं पर सफलता पायी गई है। ऐसे हालातों में

विशेष उपकरणों के माध्यम से इन पशुओं पर निगरानी रखी जाती है और पता लगाया जाता है कि इनकी आबादी में अवरोधकों का पता लगाया जाता है। पशु चिकित्सक पशु चिकित्सा में निपुण होने के साथ पशु विज्ञान में भी निपुण होता है, इसलिए वह पशु पालन की अनेक गतिविधियों को बखूबी निभाता है।

### i'kqikyd dk Kkuo/ku

पशु चिकित्सक पशुपालकों को पशुओं की उचित देखभाल करने के लिए भी प्रेरित करता है ताकि असमय ही उसके किसी पशु की मृत्यु न होने पाए। समय–समय पर पशु चिकित्सक पशुपालकों के साथ संगोष्ठियां करते रहते हैं व उनका पशुपालन में ज्ञानवर्धन करते हैं। पशुधन को घातक बीमारियों से बचाने के लिए समय–समय पर रोग प्रतिरोधक टीकाकरण करते हैं। इस प्रकार पशु चिकित्सक पशुपालक के पशुधन की रक्षा करते हुए उनकी आजीविका में बढ़ोतरी करता है।

### i'kq/ku dh xq.koÙkk esa lq/kkj

पशुधन की गुणवत्ता में लगातार प्रयासरत पशु चिकित्सक पशुपालकों के पशुओं की गुणवत्ता सुधार जैसे कि कृत्रिम गर्भाधान का कार्य करते हैं जिससे उनके पशुओं का उत्पादन बढ़े और पशुपालक सदैव अच्छी आजीविका की ओर अग्रसर रहते हैं। समयानुसार, यदि पशुपालक को धन की आवश्यकता होती है तो वह अपने पशुधन को बेच कर धन अर्जित करता है।

## विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

| क्र.सं. | पशु विज्ञान केन्द्र |
|---|---|
| 1. | पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल |
| 2. | पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत |
| 3. | पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद |
| 4. | पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा |
| 5. | पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी |
| 6. | पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक |
| 7. | पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी |
| 8. | पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव |
| 9. | विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार |
| 10. | पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला – |

# एथनोवेटरीनरीः परंपरागत पशु आयुर्वेद

**के.एल. दहिया**
पशु चिकित्सक, राजकीय पशु हस्पताल, हमीदपुर (कुरुक्षेत्र),
पशु पालन एवं डेयरी विभाग, हरियाणा

प्राकृतिक चिकित्सा एक ऐसी अनूठी पद्धति है जिसमें जीवन के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक खण्डों का रचनात्मक सिद्धांतों के साथ व्यक्ति के सद्भाव का निर्माण होता है। इसमें स्वास्थ्य प्रोत्साहन, रोग निवारक और उपचारात्मकता के साथ–साथ शरीर में दोबारा से मजबूती प्रदान करने की भी अपार संभावनाएं हैं। ब्रिटिश नेचुरोपैथिक एसोसिएशन के घोषणापत्र के अनुसार "प्राकृतिक चिकित्सा, उपचार की एक ऐसी प्रणाली है जो शरीर के अन्दर महत्वपूर्ण उपचारात्मक शक्ति के अस्तित्व को मान्यता देती है।" अतः यह पद्धति रोग का कारण दूर करने के लिए अर्थात् रोग ठीक करने के लिए शरीर से अवांछित और अप्रयुक्त अर्थात् विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालकर शरीर प्रणाली की सहायता का समर्थन करती है।

एथनोवेटरीनरी प्राकृतिक पशु चिकित्सा की एक ऐसी परम्परागत पशु चिकित्सा पद्धति है जिसमें पशुओं के उपचार के लिए पौधों एवं उनके उत्पादों का उपयोग आस्था और विश्वास के साथ किया जाता है। एथनोवेटरीनरी शब्द का उपयोग सबसे पहले 1986 में मैक कोरक्ले ने किया था। यह पारंपरिक ज्ञान समाज के लिए अनमोल और सीमित है, जिसे समाज में प्रलेखित और लागू करने की आवश्यकता है। उपचार में पौधों और उनके भागों और उत्पादों के उपयोग के बहुत फायदे हैं, क्योंकि वे सस्ते हैं, आसानी से उपलब्ध हैं और उनके कोई दुष्प्रभाव भी नहीं हैं।

भारत और विदेशों के विभिन्न भागों में इस छिपे हुए ज्ञान का मूल्यांकन और आलेख करने के लिए बहुत सारे कार्य किए गए हैं, लेकिन अभी भी यह जानकारी दुर्लभ है और दूसरों के लिए अस्वीकार्य है। ऋग्वेद, अथर्ववेद और आयुर्वेद, पशु चिकित्सा के रूप में पौधों के उपचारात्मक गुणों के बारे में जानकारी देने वाले अग्रणी दस्तावेज हैं इसलिए वैदिक काल (3500 ईसा पूर्व से 200 ईसा पूर्व) तक, भारतीय चिकित्सक (वैद्य) और जड़ी–बूटियों के ज्ञाता धनवंतरी, अत्रेय, नागार्जुन, पतंजलि, बागभट्ट, शुश्रुत और चरक आदि महान व्यक्तित्वों के रूप में प्रकट हुए जिन्होंने समाज के कल्याण के लिए पारंपरिक भारतीय चिकित्सा पद्धति का अभ्यास किया। भारत में पशु चिकित्सा पद्धति के अस्तित्व का पहला साहित्यिक प्रमाण ऋग्वेद (2000–1400 ई.पू.) में पाया जाता है।

एलोपैथी चिकित्सा पद्धति में विभिन्न बीमारियों का इलाज करने के लिए बहुत से पौधों की प्रजातियों का उपयोग किया जाता है। यह एक अच्छी तरह से स्थापित तथ्य है कि पौधे आम लोगों के विभिन्न रोगों और विकारों के इलाज के लिए एक आवश्यक भूमिका निभाते हैं। प्राकृतिक स्वास्थ्य के लिए औषधीय पौधे हमारी प्रकृति का बहुमूल्य उपहार है। आधुनिक औषधियों की एक बड़ी संख्या को प्राकृतिक स्त्रोतों से लिया गया है, जो कि अधिकतर वनस्पति जगत से ही प्राप्त होती हैं। वनस्पति आधारित पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली स्वास्थ्य देखभाल में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए बनी रहती है, जिसमें विश्व की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या इलाज के लिए नियमित रूप से विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए पारंपरिक औषधियों पर निर्भर रहती है जबकि भारत में लगभग 65 प्रतिशत जनता पारंपरिक चिकित्सा पर निर्भर है।

एथनोवेटरीनरी में स्थानीय चिकित्सकों का ज्ञान परम्परागत चिकित्सा पद्धति में उनकी जानकारी और अनुभव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है लेकिन प्रालेखित न होने के कारण उनका यह ज्ञान सिकुड़ता जा रहा है। यह इस बात की ओर इशारा करता है कि परम्परागत चिकित्सा में उपयोग किये जाने वाले पेड़–पौधों के बारे में प्रचलित ज्ञान अपरिवर्तनीय हानि और विलुप्ति के कगार पर है क्योंकि इस परम्परा का प्रचार–प्रसार केवल मौखिक रूप से ही

पीढ़ी–दर–पीढ़ी किया जाता रहा है।

तेजी से सामाजिक–आर्थिक, तकनीकी और पर्यावरणीय परिवर्तनों से स्थिति बिगड़ती जा रही है। मानव एवं पशु पीढ़ियों से विभिन्न बीमारियों से लड़ने के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहे हैं लेकिन पर्यावरणीय क्षरण, कृषि विस्तार, सीमांत भूमि की खेती और शहरीकरण इनके लिए एक महत्वपूर्ण खतरा पैदा कर रहे हैं। इसलिए, यह राष्ट्र के परम्परागत औषधीय वानस्पतिक विद्या को प्रलेखित करने, बढ़ावा देने और संरक्षण प्रदान करने के लिए सही समय पर एक प्रयास है। इस तरह के प्रलेख, मानव की सांस्कृतिक पहचान को परिभाषित करने और बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह मानव को केन्द्रित प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन पद्धतियों की स्थापना कुंजी के रूप में सेवा करने के अलावा, नए यौगिकों की वैज्ञानिक खोज की क्षमता के रूप में भी आधुनिक दवाओं के विकास में उपयोगी हो सकते हैं। एथनोवेटरीनरी प्रैक्टिस का प्रमाणीकरण अत्यन्त रूप से आवश्यक है ताकि इस ज्ञान को संरक्षित किया जा सके और पेड़–पौधों को निरंतर पशुओं के रोगों के नियंत्रण के लिए संरक्षित किया जा सके।

हर पद्धति की तरह एथनोवेटरीनरी की भी कुछ कमियाँ हैं जैसे कि इस पद्धति के अंतर्गत विभिन्न रोगों का निदान अपर्याप्त होने के साथ–साथ तीव्र जीवाणु एवं विषाणु रोगों की पहचान एवं उनकी चिकित्सा में कम निपुणता है जबकि आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत उपलब्ध टीकाकरण से विषाणु जनित रोगों का नियन्त्रण संभव होता जा रहा है। एक तकनीकी दृष्टिकोण से, कुछ मामलों में एथनोवेटरीनरी चिकित्सा कुछ हद तक अप्रभावी सी लगती है क्योंकि मौसम, उनसे औषधि तैयार करने और सेवन की विधि के अनुसार उनकी इलाज की प्रभावशीलता में परिवर्तन देखने को मिलता है। आमतौर पर उनके सेवन की विधि स्थानीय स्तर की होती है और उनके आगे प्रचार–प्रसार की संभावना भी सीमित ही होती है। अधिकांशतः विषाक्तता और अल्प मात्रा देने के मामले अधिक होते हैं क्योंकि उनके सेवन के संबंध में शारीरिक भार के अनुसार (प्रति किलोग्राम) सेवन की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। दूसरी ओर, अत्याधिक कटाई से वनस्पति विविधता को भी खतरा है जिसमें अर्ध–शुष्क क्षेत्र एवं चरागाहें इत्यादि शामिल हैं। वनों की अत्याधिक कटाई से जीव विविधता को भी खतरा है।

हालांकि, कुछ कमियों के बावजूद, एथनोवेटरीनरी चिकित्सा की प्रभावकारिता आमतौर पर दस्त, दुग्धोत्पादन, घाव, कोक्सीडायोसिस और प्रजनन संबंधी विकारों जैसे सामान्य पशुधन रोगों के नियन्त्रण के लिए व्यापक स्तर पर सिद्ध हुई है। हाल के वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों के शोधकर्ताओं की बढ़ती संख्या ने देशी और स्थानीय समुदायों में पारंपरिक पशु स्वास्थ्य प्रबंधन पद्धतियों की संभावित प्रभावशीलता का अध्ययन, मूल्यांकन, पुष्टि, सत्यापन और दस्तावेजीकरण किया है। अनुसंधानकर्ताओं ने पशुपालकों द्वारा पहले से उपयोग की जाने वाली पौधों की प्रजातियों के लिए वनस्पति रसायन विज्ञान और उनके शरीर में कार्य के तरीकों की समझ भी प्रदान की है। शोधों के परिणामों में कई प्रकार के कीटनाशक युक्त पौधों का पता चला है जिनको पशुओं के इलाज के लिए विश्वासपूर्वकता और सुरक्षित रूप से इस्तेमाल किया जा सकता है। इन वनस्पति उत्पादों का कानूनी पंजीकरण आमतौर पर उनके प्रचार के लिए आवश्यक नहीं होता है। इस दृष्टिकोण से ग्रामीण आँचल में मौजूद पशुओं के प्रदर्शन एवं उत्पादन में सुधार के लिए उपयुक्त स्थायी रणनीति उपलब्ध करवाने के साथ–साथ स्थायी आजीविका में भी सुधार किया जा सकता है।

कुछ कमियाँ के होने के बावजूद भी एथनोवेटरीनरी चिकित्सा स्वतंत्र रूप से हर किसी के लिए उपलब्ध है और मूल्य अनुपात के आधार पर सस्ते में उपलब्ध हो जाती है। इसके अन्तर्गत तैयार औषधि को आसानी से मुँह द्वारा अथवा पशु के शरीर पर लगाया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में रोगरोधी दवाओं की रोगाणुओं के प्रति रोग प्रतिरोधकता बढ़ रही है लेकिन एथनोवेटरीनरी चिकित्सा में रोगाणुओं के प्रति रोग प्रतिरोधकता का प्रभाव नहीं है या नगण्य ही है। अतः वनस्पतियों का ज्ञान रखने वाले इसका उपयोग निरंतर कर रहे हैं।

आधुनिक पशु चिकित्सा पद्धति में उपयोग की जाने वाली औषधियों के रोगी पशुओं में उपयोग के बाद उनके द्वारा उत्सर्जित पदार्थों का सेवन वैज्ञानिक तौर से कुछ दिनों के लिए निषेद्धित किया जाता है ताकि इन पदार्थों के

सेवन से पशुओं को दी गई औषधियों के अंश मानव आहार श्रृंखला में न जाने पाएं। मानव आहार श्रृंखला में प्रवेशोप्रान्त इन औषधियों के प्रति मानवों में रोग प्रतिरोधकता बढ़ जाने का खतरा रहता है और कई बार एक अच्छी औषधि भी कारगर साबित नहीं हो पाती है। इसके साथ ही रोगी पशु के इलाज के दौरान उपयोग की जाने वाली औषधियों के कारण उनके द्वारा उत्सर्जित उत्पादों के निषेद्धकरण से पशु पालक को आर्थिक हानि भी होती है। अतः इस हानि से बचने के लिए वह इन उत्पादों, खासतौर से दूध, अण्डा इत्यादि को बाजार में बेचता है। इसलिए सामान्य घटना है कि रोगाणुरोधी औषधियों के अवशेष मानव आहार श्रृंखला में प्रवेश कर रहे हैं जो मानव समाज के लिए भविष्य में खतरे की ओर इशारा करते हैं। मानव आहार श्रृंखला में औषधि संदूषण को रोकना बहुत ही मुश्किल कार्य है। हालांकि, आधुनिक पशु चिकित्सा को किसी भी हालात में नकारा नहीं जा सकता है लेकिन साथ ही परम्परागत पशु चिकित्सा अर्थात् एथनोवेटरीनरी को भी नजर अन्दाज नहीं किया जाना चाहिए।

आज के आधुनिक दौर में भी स्वयं का उपचार करने के साथ–साथ बहुत से पशु पालक अपने रोगी पशुओं का इलाज स्वयं ही करते हैं। अत्याधिक अथवा गंभीर अवस्था में ही वे चिकित्सक के पास इलाज के लिए जाते हैं। इतना ही नहीं बहुत से चिकित्सक भी आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ–साथ बाजार में उपलब्ध देशी जड़ी–बूटीयों से तैयार औषधियों से इलाज कर रहे हैं। अतः आज के इस आधुनिक दौर में विलुप्तप्रायः वनस्पतियों पर गहन शोध कार्य की आवश्यकता है।

आज भारत में परम्परागत चिकित्सा का एक अच्छा उदाहरण प्राकृतिक खेती है जिसमें न केवल यूरिया इत्यादि उर्वरकों का बल्कि रसायनिक कीटनाशकों का उपयोग भी वर्जित है और बहुत ही कम मात्रा में खाद के उपयोग से अच्छा कृषि उत्पादन लिया जाता है जिससे अन्न के माध्यम से मानव आहार श्रृंखला में पहुंचने वाले घातक रसायनों को रोका जाता है। इसी प्रकार प्राकृतिक खेती के अन्तर्गत उत्पादित चारा पशुओं को खिलाने से पशु आहार श्रृंखला में प्रवेशोप्रान्त न केवल पशुजन्य दूध एवं अण्डा जैसे उत्पादों में कीटनाशकों के अंश को समाप्त किया जा सकता है बल्कि इसके माध्यम से पशु चिकित्सा मानवीय समाज को निरोगी शरीर रखने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

पशु उत्पादों पर हुए शोधों से ज्ञात हुआ है कि मनुष्य ही नहीं पशु भी रसायनों से अछूते नहीं हैं। पशुजन्य उत्पाद खासतौर पर हर मनुष्य के दैनिक आहार का हिस्सा दूध भी इससे अछूता नहीं है। इन शोधों से यह भी ज्ञात होता है कि मनुष्यों के साथ–साथ पशुओं में इन रसायनों से बीमारियाँ बढ़ रही हैं। कीटनाशक मिले दूध के लगातार सेवन से कई प्रकार की बीमारियाँ होती हैं, जिनमें मुख्य रूप से कैंसर, गुर्दे के रोग, जिगर रोग, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, उदर रोग और आँखों के रोग होते हैं। रसायनयुक्त आहार से पशुओं और मनुष्य में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। इन बीमारियों के कारण औसत आयु भी कम हो जाती है। खेती में अन्धाधुन्ध रसायनों के उपयोग से बहुत से पक्षी जैसे कि घरेलू चिड़िया, कौवा, गिद्धों की संख्या में भारी कमी आई है। ऐसे में एथनोवेटरीनरी चिकित्सा एवं रसायनमुक्त खेती के माध्यम से पशुजन्य उत्पादों से इनके संदूषण को दूर किया जा सकता है।

इस पृथ्वी पर, वनस्पति रूपी मौजूद या उत्पादित संसाधन के बिना जीवनयापन संभव नहीं है। इस बात का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के लिए वनस्पतियों का ही सेवन किया जाता है। पशुओं से दुग्ध उत्पादन करने के लिए वनस्पति जनित आहार ही दिया जाता है। विश्व की पहली प्रतिजैविक औषधि पेनिसीलिन भी वनस्पतिजनित ही है और आज भी विभिन्न प्रकार की वनस्पति जनित प्रतिजैविक औषधियों का उपयोग निरंतर जारी है। दुग्ध उत्पादन करने वाले पशु का केवल चारा ही बन्द करने मात्र से उसका शारीरिक स्वास्थ्य कमजोर होने के साथ–साथ उसका दुग्ध उत्पादन भी अत्यधिक कम हो जाता है। अतः वनस्पति जनित औषधि विज्ञान रूपी आयुर्वेद को कभी भी नजर अन्दाज नहीं किया जाना चाहिए। यही वनस्पति औषधि विज्ञान ही रूग्ण होते शरीर को ठीक करने में सक्षम है। आज आवश्यकता है तो केवल इस ओर गहनता से सोच–विचार की, इस ओर सकारात्मक कदम बढ़ाने की और आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ–साथ

वनस्पति औषधि विज्ञान रूपी 'एथनोवेटरीनरी' चिकित्सा की भी ताकि भविष्य की नई बीमारियों के मण्डराते खतरे को कम किया जा सके।

हालाँकि परम्परागत चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत सारे कार्य लगातार किए जा रहे हैं जो पशुपालकों की आजीविका बढ़ाने में सहयोग दे सकते हैं। इतना ही नहीं, यदि पशु चिकित्सा के ज्ञाता इस दिशा में सकारात्मक विचार के साथ कार्य करते हैं तो वे 'एक चिकित्सा– एक स्वास्थ्य' की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिसमें मानवीय चिकित्सक, पशु चिकित्सक, कृषि वैज्ञानिक, आयुष चिकित्सक एवं पर्यावरण सरंक्षक मुख्य भूमिका निभा सकते हैं। एक सदी पहले रुडोल्फ विरचॉव ने भी कहा था "पशु और मानव चिकित्सा के बीच कोई विभाजित रेखा नहीं है– न ही होनी चाहिए। वस्तु अलग है, लेकिन प्राप्त अनुभव सभी चिकित्साओं का आधार बनता है।"

यदि आधुनिक दौर में रूडोल्फ विरचॉव के शब्दों का गहनता से विचार किया जाए तो आयुर्वेद के माध्यम से परम्परागत चिकित्सा पद्धति के समावेश से ही 'एक चिकित्सा– एक स्वास्थ्य' की परिकल्पना की जा सकती है। अतः एथनोवेटरीनरी चिकित्सा की अहम् भूमिका हमारे सामाजिक परिवेश में अभी भी बखूबी कार्यशील है जिसको आधुनिक वैज्ञानिक स्तर पर बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि विलुप्तप्रायः इस पद्धति से लाभ उठाया जा सके जिसमें पशु स्वास्थ्य एवं पशु विज्ञान विशेषज्ञ महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।


# विस्तार शिक्षा निदेशालय

## लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

### प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

# भारत में पिगरी क्षेत्र की संक्षिप्त पृष्ठभूमि: अतीत, वर्तमान और भविष्य

**ओशिन[1], सागर कादियान[2] एवं नन्धिनी पी.बी.[3]**

[1,3]पशु जेनेटिक्स एवं प्रजनन विभाग, एनडीआरआई, करनाल, हरियाणा, [2]पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

तेजी से बढ़ती मानव आबादी के लिए भोजन के साथ–साथ पोषण सुरक्षा हासिल करने में हमारे देश के सामने आने वाली चुनौतियों को पशुधन खेती में एक एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है। संसाधनों को सीमित उपलब्धता के साथ और पर्यावरण पर दबाव को कम करने की आवश्यकता के साथ, हमारे पशुओं को पालने के लिए निश्चित रूप से टिकाऊ भोजन का उत्पादन करना मुख्य चुनौती होगी।

भारत जैसे राष्ट्र में जहां आबादी अभी भी अनियंत्रित दर से बढ़ रही है, वहां पिगरी क्षेत्र में बहुत अधिक अवसर हैं। सूअरों में पीढ़ी का अंतराल छोटा होता, एक मादा सुअर 8–9 महीने की उम्र में प्रजनन तौर पर परिपक्व हो जाती है और एक वर्ष में जन्न सकती है। वे प्रत्येक फैरोइंग में 6–12 पिगलेट का उत्पादन करते हैं। ब्रायलर के बाद सूअर अधिक कुशल फीड कन्वर्टर्स होते हैं यानी वे दिए गए फीड भार से अधिक लाइव वेट गेन करते हैं। वे विभिन्न प्रकार के फीड सामानों का उपयोग करते हैं जैसे अनाज, हरा चारा, क्षतिग्रस्त फीड और कचरा और 65 से 80 प्रतिशत की ड्रेसिंग प्रतिशत के साथ उन्हें मूल्यवान पौष्टिक मांस में परिवर्तित करते हैं। विश्व स्तर पर, यह सबसे अधिक स्वीकार किया जाने वाला मांस है और भारत जैसे प्रगतिशील राष्ट्र के लिए जिसका मांस उद्योग अभी तक पूरी तरह से अपनी उत्पादन क्षमता का पता नहीं लगा पाया है, पोर्क अंतिम मांस हो सकता है यदि इसके घरेलू और निर्यात क्षमता का पूरी तरह से दोहन किया जाता है। पोर्क एक उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन भोजन है क्योंकि लगभग 20 प्रतिशत पोर्क प्रोटीन से बना होता है, जिससे यह एक महत्वपूर्ण मांसपेशी निर्माण मांस है। यह उच्च वसा और कम पानी की मात्रा के साथ सबसे अधिक पौष्टिक है और उच्च कैलोरी मान (242kCal /100g) है। एक 3–औंस सूअर का मांस का सेवारत पोटेशियम, राइबोफ्लेविन और जस्ता का एक अच्छा स्रोत है, और विटामिन बी 6, थियामिन, फास्फोरस, नियासिन और प्रोटीन का एक उत्कृष्ट स्त्रोत है। पोर्क सोडियम में स्वाभाविक रूप से कम है। मांस प्रदान करने के अलावा, यह ब्रिसल्स और खाद का भी स्त्रोत है। सूअर वसा को तेजी से स्टोर करते हैं जिसके लिए पोल्ट्री फीड, साबुन, पेंट और अन्य रासायनिक उद्योगों से बढ़ती मांग है। सूअरों की खाद भी व्यापक रूप से उर्वरक के रूप में उपयोग की जाती है।

अतीत में पिगरी क्षेत्र की पृष्ठभूमि उत्पादन छोटे पैमाने पर, पिछवाड़े, गैर–बाजार उन्मुख उद्यम था। सूअर पालन मुख्य रूप से छोटे और भूमिहीन किसानों यानी समाज के कमजोर वर्ग द्वारा अपनाया गया था और यह भी आदिवासी क्षेत्रों में केंद्रित था। प्रमुख फीड स्थानीय रूप से उपलब्ध वनस्पति, फसल अवशेष और रसोई अपशिष्ट हैं जो कम या बिना लागत के हैं। निम्न इनपुट पारंपरिक प्रणाली के तहत उचित आवास का अभाव था, इस प्रकार सूअरों को उच्च तापमान और बारिश जैसी प्रतिकूल मौसम स्थितियों में पाला गया। सूअरों की प्रमुख बीमारी के खिलाफ कोई भी डीवॉर्मिंग और टीकाकरण उपलब्ध नहीं था, जिससे सूअरों में उच्च मृत्यु दर होती थी। इन सूअरों में आमतौर पर कम फीड कन्वर्शन एफिशिएंसी, कम विकास दर, छोटा लिट्टर साइज बड़ा फर्रोईग इंटरवल, ज्यादा प्री वीनिंग और पोस्ट वीनिंग और कमतर स्लॉटर वेट था। किसानों द्वारा अधिकांश गैर–वर्णनात्मक प्रकार के सूअरों को पाला गया। कोई रिकॉर्ड नहीं रखा गया था जो फिर से सूअरों के इनब्रीडिंग की ओर गया।

वर्तमान परिदृश्य विकास दर पहले की तुलना में तेज है कि लिट्टर साइज 6–8 से 6–12 है और वीनिंग 3–4 से 3–6 है। जैसा ज्ञात है कि लिट्टर साइज का सीधा संबंध पूर्व की मृत्यु दर से होता है, इसलिए पूर्व की तुलना में मृत्यु दर भी कम होती है। संगठित खेत में स्वचालन प्रणाली ने वांछित विकास दर हासिल करने में बहुत मदद की है। केरल, पंजाब और गोवा में सीमित संख्या में अर्ध–वाणिज्यिक सूअर फार्मों को छोड़कर, अभी भी 70 सूअर की आबादी,

पारंपरिक छोटे धारक, कम–इनपुट मांग संचालित उत्पादन प्रणाली के तहत पाला जाता है। अर्ध–वाणिज्यिक और वाणिज्यिक सूअर पालन प्रणाली को छोड़कर, विशिष्ट उत्पादन प्रणाली में एक साधारण सूअर शैली शामिल होती है और खिलाने में स्थानीय रूप से उपलब्ध अनाज, सब्जियां और कृषि उप–उत्पाद शामिल होते हैं। वर्तमान जनगणना अनुसार देश में कुल सूअर 9.06 मिलियन है, जो पिछली जनगणना के मुकाबले 12.03 प्रतिशत कम है, इनमें 1.90 मिलियन विदेशी क्रॉसब्रेड हैं और 7.16 स्वदेशी हैं। सूअरों द्वारा कुल पशुधन का लगभग 1.7 प्रतिशत योगदान दिया जाता है। असम में सबसे अधिक आबादी (2.10 मिलियन) है, उसके बाद झारखंड, मेघालय, पश्चिम बंगाल और छत्तीसगढ़ है। बहुसंख्यक आदिवासी आबादी के लिए, विशेषकर सूअर पालन–क्षेत्र में उनके जीवन के तरीके से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। प्रति व्यक्ति आय बढ़ने, शहरीकरण और जीवनशैली और भोजन की आदतों में बदलाव के कारण पोर्क की मांग बढ़ रही है। भारत और म्यांमार के अन्य राज्यों से आयात से इस मांग को पूरा किया जाता है। उत्तर पूर्व भारत में देश के बाकी हिस्सों की तुलना में बहुत अधिक पोर्क की खपत है। इनमें से नागालैंड में प्रति व्यक्ति खपत सबसे ज्यादा है। गोवा, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल स्टेट्स मांस खाने वाले हैं और छोटे ईसाई क्षेत्र भी सूअर के मांस का सेवन करते हैं। भारत में, घरेलू मांस उत्पादन और प्रसंस्करण "मीट फूड प्रोडक्ट्स आर्डर, 1973 द्वारा नियंत्रित किया जाता है। भारत में पोर्क का उत्पादन सीमित है, जो देश के केवल 9 प्रतिशत पशु प्रोटीन स्त्रोतों का प्रतिनिधित्व करता है। 2014–15 के आंकड़ों के अनुसार देश में मांस का उत्पादन 6.6 मिलियन टन था। देश में पोर्क की वर्तमान कमी लगभग 0.48 मिलियन टन है। भारत में पोर्क उद्योग को बढ़ावा देने के लिए बेहतर शेल्फ–लाइफ के साथ पोस्ट स्लॉटर पोर्क प्रसंस्करण और उत्पादों के विकास के साथ–साथ वैज्ञानिक खेती द्वारा अंतर को कम करने की तत्काल आवश्यकता है। सूअर के उत्पादन, स्वास्थ्य और उत्पाद प्रसंस्करण में उत्कृष्टता लाने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों और नीतियों को नवीनतम एवं अच्छी तरह से संरचित करना चाहिए।

Hkfo"; dh –f"Vh क्षेत्र के उत्पादन और उत्पादकता में उत्कृष्टता लाने पर ध्यान देना चाहिए। सूअर पालन से मौसमी बेरोजगार ग्रामीण किसानों को रोजगार के अवसर मिलेंगे और उनके जीवन स्तर में सुधार के लिए पूरक आय होगी। उत्पादन की लागत को कम करके इस क्षेत्र का विकास संभव है, जो कि सटीक फीडिंग, यूटिलाइजेशन ऑफ फीड रिसोर्स (गैर–पारंपरिक, मानसून हर्ब) के उपयोग, वैज्ञानिक पालन प्रथाओं को अपनाने, प्रभावी और नियोजित स्वास्थ्य प्रबंधन आदि के विचारों का पालन करके संभव है। उच्च विकास दक्षता, संतुलन खिलाने, उच्च फीड दक्षता, उच्च प्रजनन क्षमता को पूरा करने, प्रजनन क्षमता में सुधार लाने और केंद्रित पशु चिकित्सा कार्यक्रमों के माध्यम से रुग्णता और मृत्यु दर में सुधार करना और एकीकृत दृष्टिकोण की अनुपालना में, प्रति पशु उत्पादकता में वृद्धि का लक्ष्य बेहतर जर्मप्लाज्म की मदद से नस्ल सुधार द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सूअर की किस्मों में सुधार लाने, सूअर आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली कार्यक्रमों को मजबूत करने, गुणवत्ता जर्मप्लाज्म की मांग और आपूर्ति के बीच की कमी को कम करने, पोर्क की घरेलू आवश्यकता को पूरा करने, निर्यात की क्षमता को पूरा करने के लिए केंद्रित प्रयास किए जाने चाहिए। तब क्षेत्र की बाद की कल्पना को ध्यान में रखा जाता है यदि योजनाबद्ध और केंद्रित रणनीतियों को लागू किया जाता है जिस तरह से उन्हें होना चाहिए। तो अगले 35–40 वर्षों के दौरान 95 प्रतिशत के स्तर पर सूअरों के क्रॉसब्रेड और बेहतर किस्म का प्रभुत्व होगा। स्वदेशी सूअरों की आबादी लगभग 5 प्रतिशत होगी, मुख्य रूप से स्वस्थानी संरक्षण कार्यक्रमों में विभिन्न के तहत बनाए रखा जाता है। विभिन्न प्रकार की आसानी से उपलब्ध तकनीक जैसे भ्रूण लिंग जांच और क्लोनिंग तकनीक, नैनो टेक्नोलॉजी, न्यूट्रीग्नोमिक्स विकसित किए जाएंगे। बेहतर कचरा प्रबंधन और पोषक प्रबंधन योजना (एनएमपी) के लिए प्रौद्योगिकी विकसित की जाएगी। सूअर वीर्य संरक्षण, खुराक का मानकीकरण, समय, विधि, गर्भावस्था निदान किट, आनुवांशिक हेरफेर के लिए ईटीटी पर प्रभावकारिता अध्ययन, एस्ट्रस सिंक्रनाइजेशन प्रोटोकॉल के विकास के बारे में अधिक सटीक तरीके आएंगे। स्वदेशी सूअरों का उचित चयन और संभोग साधनों की मदद से ब्रायलर सूअर के विकास को मूर्तिमान किया जा सकता है।

सूअरों को समृद्धि के लिए सवारी करना एक विचार है जो कुछ राज्यों के प्रगतिशील किसानों द्वारा अच्छी तरह से प्राप्त किया गया है और उनकी सफलता की दास्तां देश के भविष्यवादी किसानों के लिए एक अद्भुत प्रेरणा है।

# स्युडोरेबीस रोग बारे आवश्यक जानकारी

**दिव्या अग्निहोत्री, स्नेह लता चौहान एवं तरुण कुमार**
वेटरनरी क्लीनिकल काम्प्लेक्स
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

स्युडोरेबीस एक विषाणुजनित रोग है जो अल्फा हर्पीस नामक विषाणु द्वारा होता है। स्युडोरेबीस रोग को ''पागल खुजली'' के नाम से भी जाना जाता है। यह विषाणु जनित रोग शरीर के सभी अंगों को प्रभावित करता है। यह रोग प्रायः सूअर में होता है, परन्तु कुत्ता, बिल्ली, गाय, भेड़ आदि पशु भी इस रोग से प्रभावित हो सकते हैं।

मुख्यतः सूअर की नाक के संपर्क में आने पर यह संक्रमण फैलता है, क्योंकि नाक से आने वाले स्त्राव में यह विषाणु रहता है। दूषित पेयजल और खाने के बर्तन, बाल्टी इत्यादि भी इस रोग को फैला सकते हैं। लोगों के जूते, कपड़े इत्यादि भी इस विषाणु को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में सक्षम है। यह विषाणु घास, मिट्टी एवं गन्दगी में जीवित रहता है व हवा के वाष्पीकृत बूंदों द्वारा फैलता है। इस विषाणु की पहचान/जाँच सूअरों के/ग्रस्त कुत्तों के अथवा बीमार पशु के मूत्र, नाक के स्राव, दूध, और टॉन्सिल्स में की जाती है।

**L;|Mkjch l %** कुत्ते में चेहरे और गर्दन पर गंभीर खुजली, पागल खुजली के निशान।

नवजात एवं कम उम्र के सूअरों में यह रोग भयावय रूप से 100 प्रतिशत मृत्यु दर कर सकता है। कुत्तों में यह संक्रमण सूअरों से फैलता है। प्रायः जो कुत्ते स्वाधीन रूप से खुले में घूमते हैं एवं सूअरों के साथ सीधे संपर्क में आते हैं अथवा उनके मल, मूत्र अथवा मुँह, नाक, आँख से निकलते हुए पदार्थ के संपर्क में आते हैं, वह इस बीमारी की चपेट में आ जाते हैं।

तेज बुखार, सांस लेने में तकलीफ, तीव्र खुजली, चक्कर आना, चलने–फिरने में तकलीफ होना, अचानक मृत्यु होना इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। इस रोग से प्रभावित कुत्तों में



मृत्यु दर 100 प्रतिशत है। कुत्तों में इसमें संक्रमण होने के 48 से 92 घंटों के भीतर मृत्यु होने की संभावना होती है। इस रोग का कोई इलाज संभव नहीं है परन्तु रोग के लक्षण देखते ही तत्काल पशु चिकित्सक से परामर्श करें।

**/;ku nsus ;kX; egRoi.kZ ckrsa %**

1. सबसे महत्वपूर्ण ध्यान देने योग्य बात यह है कि आप अपने पालतू कुत्ते अथवा अन्य पशुओं को सूअर के संपर्क में आने से बचाएं।
2. जो कुत्ते खुले ढाणियों में घूमते हैं वह इस रोग से अधिक ग्रस्त हो सकते हैं।
3. ध्यान रहे कि जिस जगह आप अपने पालतू कुत्ते को घुमाने ले जाएँ वह स्थान स्वच्छ हो और कोई भी कचरा, मल इत्यादि वहां एकत्रित न हो।
4. आपका कुत्ता जब भी घर से बाहर घूम कर आता है तो लाल दवाई से उसके पैरों को साफ करें।
5. साफ सफाई का ध्यान रखें।
6. अपने पालतू कुत्तों को अधपका अथवा कच्चा सूअर का माँस न खिलाएं।

स्युडोरेबीस रोग के लिए यह समझना जरूरी है कि सावधानी रखने में ही बचाव है।

**प्रकाशक:**

**डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया**

निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार–125004 (हरियाणा)

**सम्पादक:**

**डॉ. देवेन्द्र सिंह**

**सम्पादकीय मण्डल:**

**डॉ. वन्दना भनोट**

**डॉ. दिपिन चन्द्र यादव**

**डॉ. राजेश कुमार**

**प्रकाशक:** डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ. देवेन्द्र सिंह के संपादन में **डोरेक्स ऑफसैट प्रिन्टर्स, हिसार** से लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवा कर जुलाई, 2020 को प्रकाशित किया।

**निर्देश:** इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई हैं। सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक तथा लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ब्राँडेड दवाइयों व उत्पादों के नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए हैं तथा इन्हें विश्वविद्यालय की ओर से सिफारिश न माना जाए। पाठकों को यह सलाह दी जाती है कि किसी भी जानकारी को प्रयोग में लाते समय विशेषज्ञों की सलाह लें। किसी भी त्रुटि के लिए सम्पादक से सम्पर्क किया जा सकता है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र हिसार न्यायालय होगा।

HAFED

HAFED

# हैफ़ेड कैटल फीड प्लांट, रोहतक

(AN ISO 9001:2008 Certified Unit)

3 तरह का गुणवत्ता वाला पशुचारा
खिलाने से पशुओं का दूध बढ़े घणा सारा।

स्पैशल कैटल मैश

प्रीमियम पशु आहार

सुप्रीम पुसा मैश

**हैफेड संतुलित पशु आहार की विशेषताऐं**

1. इसमें सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में है।
2. यह पाचक, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक है।
3. इसको खिलाने से पशु की संतुष्टि होती है तथा ये स्वास्थ्यवर्धक है।
4. विभिन्न खाद्य पदार्थों को विधिवत मिश्रित किया गया है।
5. इसका खिलाना आर्थिक रूप से सस्ता है।
6. इसके अधिकृत विक्रेता हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान व हिमाचल प्रदेश के अधिकतर गांव, कस्बों व शहरों में है।

**हैफेड संतुलित पशु आहार खिलाने के लाभ**

पशुओं को संतुलित पशु आहार खिलाने से निम्नलिखित लाभ होते है:-

1. हैफेड संतुलित आहार खिलाने से दुग्ध उत्पादन मात्रा में वृद्धि होती है।
2. हरे चारे की उपलब्धता न होने पर पशु का पोषण विपरीत रूप से प्रभावित नही होता है।
3. पशु में रोग रोधक क्षमता बढ़ाता है एवं पशु स्वस्थ रहता है।
4. पशु की प्रजनन क्षमता बढ़ाता है।
5. पशु का बच्चा स्वस्थ व पुरे वजन के साथ पैदा होता है।
6. पूरी दुग्ध उत्पादन क्षमता के अनुसार कम खर्चों पर दूध का उत्पादन होता है।

महाप्रबन्धक
हैफ़ेड कैटल फीड प्लांट

नजदीक सुखपुरा चौक, रोहतक । फोन. 01262-276709, 01262-277101
ई-मेल : cfphfdrtk@hry.nic.in, cfphfdrtk@gmail.com